Chapter-3

:: तृतीय अध्याय ::

:: प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल्यांकन ::

:: तृतीय अध्याय ::

: प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन ::

प्रास्ताविक :

उपन्यास की सभी परिभाषाओं को देख जाने पर एक तथ्य पूर्णरूपेण ज्ञापित होता है कि उपन्यास का व्यावर्तक प्राण-तत्व उसकी यथार्थधर्मिता है । उपन्यास में सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करने की प्रवृत्ति रहती है । समाज का यह यथार्थ देशकाल सापेक्ष होता है । समाज में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में और भिन्न-भिन्न कालखण्डों में जो विविध प्रकार की प्रवृत्तियाँ एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, उनके आधार पर उस काल-विशेष का यथार्थ निर्मित होता है । यथार्थ का एक सीधा-सादा अभिप्राय वास्तविकता से है । एक समय और एक प्रदेश की जो वास्तविकता होती है, वह दूसरे समय

और दूसरे प्रदेश की वास्तविकता नहीं हो सकती । यदि देश देश-गत एवं कालगत परिस्थितियों को परिवर्तित कर दिया जाय तो एक समय की वास्तविकता अवास्तविकता में परिवर्तित हो जाएगी ।

यथार्थ मानव-जीवन एवं युगचेतना को महत्व देते हुए अंग्रेजी की सुप्रसिद्ध विदुषी क्लारारीव ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहा है — " द नौवेल इज़ ए पिक्चर आफ रियल लाईफ एण्ड मैनर आफ टाईम्स इन व्हिच इट इज़ रीटन . द नौवेल गिव्ज़ ए फैमिली रिलकx रीलेशन आफ सच थिंग्स एज पास एवरीडे बिफोर अवर आईज़ सच एज मे हैपन टु अवर फ्रेण्ड्स आर टु एण्ड द पर-फेक्शन आफ इट इज़ टु प्रेजण्ट एवरी सीन इन सो इजी एण्ड नेचरल मैनर एण्ड टु मैक थेम एपियर सो प्रोबेबल एज टु डीसीव अस इण्टु परस्यूएशन (एटलिस्ट व्हाइल वी आर रीडिंग) दैट आल इज रियल अन्टिल वी आर अफेक्टेड बाय जोय आर डिस्ट्रेसिस आफ परसन्स इन द स्टोरी एज इफ दे वेर अवर ओउन . " ।

अर्थात् उपन्यास यथार्थ मानव-जीवन और तत्कालीन समाज-व्यवहार का चित्र है । उपन्यास की कसौटी यह है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इस ढंग से करे कि वह सामान्य हो जाए और कमसेकम उपन्यास पढ़ते समय पाठक को यथार्थ का भ्रम हो जाए , पाठक उन्हें अपना समझने लगे ।

इस परिभाषा में एक बात तो स्पष्ट है कि उपन्यास में जो यथार्थ प्रतिबिंबितx प्रतिबिंबित होता है वह तत्कालीन समाज-व्यवहार की उपज है । यदि उसे उसके मूल परिवेश से विच्छिन्न कर दिया जाए तो उसकी यथार्थता शंकास्पद

प्रमाणित हो सकती है । उपन्यास साहित्य के एक अन्य विवेचक ज्योर्ज मूर ने इस सन्दर्भ में लिखा है — " द नोवेल , इफ इट बी एनीथिंग इज कन्टेम्परेरी हिस्टरी एण्ड एक्जेक्ट एंड लाइक रीप्रोडक्शन आफ द सोशियल सराउण्डिंग आफ द वन ही लीव इन . " 2

अर्थात् उपन्यास समकालीन इतिहास से विशेष कुछ भी नहीं है , वह हम जिस युग में जी रहे हैं , उसके सामाजिक परिवेश का नितांत शोध एवं सम्यक् पुनर्निमाण है ।

ऊपर के विवेचन का सार-संक्षेप यह है कि औपन्यासिक यथार्थ का मूल्यांकन उसके परिवेश पर निर्भर करता है । इस बात को एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है । मोहम्मद पयगंबर के समय मक्का और मदीना के बीच जो भयंकर युद्ध हुआ था उसमें हजारों पुरुष लड़ाई के मैदान में खेत हो गए थे । फलतः अनेक स्त्रियाँ बेघर और बेसहारा हो गई थीं । तब पयगंबर साहब ने यह आदेश दिया था कि यदि कोई पुरुष शारीरिक तथा आर्थिक दृष्टि से सक्षम हो तो वह चार स्त्रियों को रख सकता है । यहाँ पयगंबर साहब का आशय निराधार स्त्रियों को आधार प्रदान करके उन्हें नीतिभ्रष्ट तथा दिशाभ्रष्ट होने से बचाने का था । यह उस काल का सत्य था । उस काल की वास्तविकता थी । बाद में कालक्रम में परिस्थितियों में बदलाव आने पर पयगंबर साहब की यह बात किसीको अनुचित भी लग सकती है । ठीक उसी तरह किसी युग-विशेष में "शतपुत्रवती भव " आशीर्वाद था , परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह अभिशाप हो सकता है । दूसरे शब्दों में कहें तो एक समय में जो बात प्रासंगिक होती है , दूसरे समय में अप्रासंगिक भी हो सकती है ।

परन्तु बड़ा लेखक अपने समय की वास्तविकता को ,

अपने समय के यथार्थ को प्रस्तुत करते समय उसका सम्पूर्ण मनुष्य की मूलभूत चित्तवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए कर देता है कि उसकी रचना में निरूपित तत्कालीन यथार्थ दूसरे समय में भी अप्रासंगिक नहीं हो जाता । इस अध्याय में हमारा उपक्रम यह है कि हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित यथार्थ का परीक्षण - मूल्यांकन करें और इस प्रश्न पर विचार करें कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में जो प्रश्न और समस्याएँ हैं, वे आज के सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं कि नहीं ? प्रासंगिक हैं तो कितनी और किस हद तक ? और प्रासंगिक नहीं हैं तो कैसे ?

सेवासदन :

"सेवासदन" सर्वप्रथम उर्दू में "बाजारे हुस्न " के नाम से प्रकाशित हो चुका था , किन्तु हिन्दी में उसका प्रकाशन सन् 1918 में हुआ । हिन्दी का यह पहला उपन्यास है, जिसमें किसी लेखक ने व्यापक फलक पर सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित किया है । इसमें प्रेमचन्दजी की पैनी, सूक्ष्म, सामाजिक दृष्टि का परिचय हमें मिलता है । इसमें प्रेमचन्दजी की कमजोरियाँ, जिन पर वे ये क्रमशः प्रभुत्व पाते गए, और विशेषताएँ दोनों दृष्टिगत होती हैं । औपन्यासिक कला तथा सामाजिक समस्याओं की पकड़ उभय दृष्टि से यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा में एक नये मोड़ को निर्देशित करता है । यद्यपि पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवास दास, पं. बालकृष्ण भट्ट आदि लेखकों ने प्रेमचन्दपूर्व काल में ही सामाजिक उपन्यासों के पथ को प्रशस्त कर दिया था, तथापि प्रेमचन्द जब सन् 1918 में "सेवासदन" के प्रकाशन के साथ आविर्भूत होते हैं ; तब उनका महत्व

दो दृष्टियों से आंका जाता है । एक तो यह कि बाबू देवकीनंदन खत्री तथा बाबू गोपालराम गहमरी के कारण उपन्यास जो दूसरी पटरी पर चला गया था, उसे सही "ट्रैक" पर लाने का, हिन्दी उपन्यास को जो गुड़ब लग गया था, उसे दूर करने का कार्य प्रेमचन्द द्वारा संपन्न हुआ । यही कारण है कि डा. रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के संदर्भ में, और विशेषतः "सेवासदन" के संदर्भ में अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणी देते हैं -" "चन्द्रकान्ता" और "तिलस्मे होशरूबा" के पढ़ने वाले लाखों थे । प्रेमचन्द ने इन लाखों पाठकों को अपनी तरफ ही नहीं खींचा, "चन्द्रकान्ता" में अरुचि भी पैदा की । जनरुचि के लिए उन्होंने नये मापदण्ड कायम किये और साहित्य के नये पाठक और पाठिकाएं भी पैदा किये । यह उनकी जबरदस्त सफलता थी ।"[3]

दूसरे पं. लज्जाराम कुमोरी आदि लेखकों ने सामाजिक उपन्यासों का मार्ग तो प्रशस्त किया था, परन्तु उनकी यथार्थ विषयक दृष्टि प्रेमचन्द की भाँति स्पष्ट, सूक्ष्म, गहरी और बहुमुखी नहीं थी । मानव-चरित्र संबंधी उनकी धारणा भी अस्पष्ट एकांगी और अधूरी थी । राल्फ फाक्स महोदय ने इस संदर्भ में स्पष्ट कहा है कि उपन्यास वह पहली विधा है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ अंकित किया जाता है । यथा- " द फर्स्ट आर्ट टु अटेम्प्ट द मैन एज ए होल "[4] । प्रेमचन्दजी भी राल्फ फॉक्स महोदय की इस अवधारणा को स्पष्ट करते हैं । उनका भी स्पष्ट रूप से मानना है कि उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र मात्र है । मानव-चरित्र विषयक यह अवधारणा प्रेमचन्द-पूर्व के लेखकों में अविकसित, अस्पष्ट और धुंधली थी । प्रेमचन्द सर्वप्रथम हमें इस मानव-चरित्र की पहचान कराते हैं ।

"सेवासदन" उपन्यास का पुनर्मूल्यांकन करने से पूर्व एक

दृष्टि हम उसके कथानक पर डाल दें। दारोगा कृष्णचन्द्र अपनी सुन्दर सुशील पुत्री सुमन के विवाह हेतु दहेज जुटाने के चक्कर में रिश्वत के मामले में फंस जाते हैं। उन्हें जेल हो जाती है। अतः सुमन की माँ गंगाजली सुमन का विवाह गजाधरप्रसाद नामक एक दुहाजू से करा देती है। सुमन और गजाधर दोनों के संस्कार और प्रकृति में कोई मेल नहीं है। गजाधर पन्द्रह रुपये महीने की एक सामान्य नौकरी करता है। गजाधर के किराये के मकान के सामने भोली नामक एक गौनहारी वेश्या रहती थी। भोली के ठाठ-बाट से सुमन जलती है, तथापि अपने संस्कारों के कारण वह अपने गृहस्थ-धर्म पर टिकी रहती है। इसमें सुमन का व्यक्तिगत "ईगो" भी है कि वह भले गरीब रही, परन्तु समाज में उसका सम्मान है, उसका एक विशेष स्थान है, प्रतिष्ठित लोगों में उसका उठना-बैठना है। परन्तु कुछ दिनों बाद सुमन अनुभव करती है कि भोली के यहाँ केवल धन ही नहीं धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा वाले लोग भी माथा झुकाते हैं, सो ईर्ष्या-ग्रंथि के कारण मानसिक रूप से वह अस्वस्थ रहने लगती है और एक दिन भोली के साथ कोठे पर बैठ जाती है।

उसके बाद के घटनाक्रम में समाजसुधारक विट्ठलदास के प्रयत्नों से कोठा छोड़कर सुमन का विधवाश्रम में दाखिल होना, सुमन के कारण उसकी बहन शान्ता के विवाह में अड़चन पैदा होना, बारात का लौट जाना, सुमन के पिता कृष्णचन्द्र का उस आघात से गंगा में डूबकर आत्महत्या कर लेना, पद्मसिंह द्वारा शान्ता को भी सुमन के विधवाश्रम में रखवा देना, शहर में वेश्याओं की समस्या को साम्प्रदायिक रंग दिया जाना, अखबारों में सुमन के आश्रम-प्रवेश को लेकर कटु आलोचनाओं का निकलना, शान्ता के दूल्हे सदनसिंह का मल्लाहों का नेता हो जाना, सदनसिंह का शान्ता से विवाह कर लेना, सुमन

का शान्ता के सहित साथ सदनसिंह के यहाँ रहना , सुमन को लेकर सदनसिंह के आसपास के लोगों में टीका-टिप्पणी का होना , सुमन द्वारा शान्ता के घर को छोड़ देना , सुमन के पति गजाधर का संन्यासी हो जाना , दीन-दुःखी स्त्रियों को प्रश्रय देने हेतु सेवाश्रम की स्थापना करना , सुमन का गंगा में डूबकर आत्महत्या का प्रयास, स्वामी गजानंद (सुमन का पति गजाधर) से उसकी भेंट होना , गजानंद की प्रेरणा से सुमन का सेवाश्रम या सेवासदन के कार्यभार को संभालना जैसी घटनाओं को लिया जा सकता है । इसके साथ ही साथ लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य , साम्प्रदायिकता , हिन्दी साहित्य की दीन-हीन स्थिति , कारस्तानियों की गुलाममनोदशा जैसे प्रश्नों को छूने का कलात्मक प्रयत्न किया है ।

हमारा उपक्रम यहाँ "सेवासदन" को उसकी प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने का है । 'सेवासदन' के कृष्णचन्द्र एक ईमानदार दारोगा हैं । वह अन्य पुलिस कर्मचारियों की भाँति घूस नहीं लेते । फलतः उनकी बेटी सुमन का विवाह वे नहीं कर पा रहे । यद्यपि सुमन सुन्दर और सुशील है , तथापि दहेज के अभाव में उसका विवाह नहीं हो रहा है ।

दहेज की यह समस्या भारतीय समाज का एक कुप्रथा ही है । दहेज के कारण सुमन जैसी अनेक अरमानभरी कन्याओं की जिन्दगी तबाह हो जाती है । सरकार की ओर से कानून है कि दहेज देना और लेना जुर्म है ; परन्तु इसके कारण तो दहेज की रकम में और इजाफा हुआ है । प्रेमचन्दजी ने दहेज माँगने वाले पर चिकोटी काटी है । कृष्णचन्द्र अपनी बेटी के लिए जब वर तलाशने निकलते हैं तो उनको तरह-तरह के अनुभव होते हैं । यथा- " एक सज्जन ने कहा -- महाशय ! मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूँ । लेकिन कहूँ क्या ? अभी पिछले साल लड़की का विवाह किया ।

दो हजार रुपये केवल दहेज में देने पड़े । उस समय के दो हजार रुपये आजकल के चालीस-पचास हजार से कम नहीं हो सकते हैं । दो हजार और खाने-पीने में खर्च पड़े । आप ही कहिए, यह कमी कैसे पूरी हो ? " दूसरे महाशय इनसे अधिक नीतिकुशल निकले । बोले - "दारोगा जी ! मैंने लड़के को पाला है । सहस्त्रों रुपये उसकी पढ़ाई में खर्च किए हैं । आपकी लड़की को उससे उतना ही लाभ होगा जितना मेरे लड़के को । तो आप ही न्याय कीजिए कि यह सारा भार मैं अकेला कैसे उठा सकता हूँ ? " 5

अब प्रश्न यह है कि क्या दहेज की यह समस्या आज भी हमारे समाज में उतनी ही प्रासंगिक है ? इसका उत्तर यह है कि दहेज की समस्या आज भी न केवल प्रासंगिक है, अपितु वह और भी गंभीर और संगीन हो गई है । आयेदिन हम अखबारों में पढ़ते हैं कि दहेज के कारण अनेक नवविवाहित स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया जाता है । श्री. अरविन्द जैन द्वारा लिखित "औरत होने की सज़ा " में ऐसे अनेकों वास्तविक किस्से दिए गए हैं । इस सन्दर्भ में लेखक का यह कथन उल्लेखनीय रहेगा —

" मेरे साथ शादी करनी है तो पाँच-दस लाख दहेज, कार, कूलर, टी.वी., वी.सी.आर., फर्नीचर, कपड़ा, गहना देना पड़ेगा और साथ में पाँच लिटर मिट्टी का तेल ; एक स्टोव और माचिस और उम्र भर मेरे हुक्म की गुलामी । बदले में तुम्हें सात साल ठीक-ठीक रखने का ' कानूनी गैरण्टी कार्ड ' तो मिलेगा, लेकिन समय पर तुम्हें यह कार्ड बोगस, नकली और अर्थहीन ही लगेगा । माँ-बाप के पास यह सब दहेज में देने को नहीं है तो कानपुर की ' अलका गुड्डी और मन्नू ' की तरह पंखे से लटककर आत्महत्या कर लो । जीना चाहती हो तो मेरी माँग तो पूरी करनी ही पड़ेगी। झूठे बह-कावे में आने वाला मैं नहीं हूँ । पूरा दहेज नहीं लाओगी तो

मैं नहीं कह सकता कि तुम्हारी जिन्दगी कितने दिन की है ? मुझे तो मजबूरन मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगानी पड़ेगी , मां-बाप का इकलौता बेटा हूं , नहीं मानूंगा तो वे मुझे जायदाद से बेदखल कर देंगे । मैं क्या कर सकता हूं ? मुझे तो दुःखी होकर दुनिया से यही कहना पड़ेगा कि स्टोव पर दूध गर्म कर रही थी , साड़ी में आग लग गई । तुम्हारे घरवाले शोर मचाएंगे , तो उन्हें मैं ` अच्छी तरह ` समझा दूंगा और महीने भर में ही , तुम्हारी छोटी बहन यानी कि मेरी `साली ` की डोली मेरे घर होगी ; नहीं मानेंगे तो यह रहा पुलिस-स्टेशन और वह रही कोर्ट-कचहरी । पुलिस , गवाह और डाक्टरी रिपोर्ट कैसे ठीक-ठाक करवायी जाती है , ये सब मैं अच्छी तरह जानता हूं । उसी दिन जमानत और अगले दिन बाइज्जत रिहा हो जाऊंगा , ज्यादा होगा तो सात साल हाईकोर्ट और सुप्रिम कोर्ट अपीलों में बीत जायेंगे । इसी बीच दूसरी शादी करूंगा , फिर दहेज से घर भर जायेगा और मजे से रहूंगा । तुम्हारी सहेलियों और सिरफिरे अखबारों के चक्कर में अगर मुझे उम्रकैद की सजा हो भी गई तो क्या मुझे फाइलें गायब करवानी नहीं आतीं ? कितनी ` सुधाओं ` की फाइलें मेरे कब्जे में हैं , तुम क्या जानो ? आज तक एक भी केस में फांसी हुई है किसी को ? [6]

ऊपर श्री. अरविन्द जैन का जो कथन है , वह हमारे सांस्कृतिक जीवन का आईना है । अतः यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि जहां तक दहेज का प्रश्न है , प्रेमचंदजी का यह उपन्यास पहले भी अधिक प्रासंगिक है ।

उपन्यास में तथाकथित साधु-महात्माओं की गैरकानूनी और गुण्डागर्दी वाली प्रवृत्तियों का उल्लेख भी मिलता है । कृष्ण-चन्द्र के इलाके में रामदास नामक एक महन्त और जागीरदार है ,

जो महंतगिरी के साथ-साथ साहूकार का भी काम करता है । उसका यह कारोबार बांकेबिहारी के नाम से चलता था । दस-बीस मोटे-ताजे मुस्तण्डे साधु उसके अखाड़े में पड़े रहते थे , जो दूध-मलाई खाते और दण्ड पेलते थे , चरस और भांग खूब पीते थे । महंतजी की अफसरों से भी सांठगांठ थी । किसी असामी की यह हिम्मत नहीं कि महंतजी को कर अथवा सूद देने से इन्कार कर दे । जोxxxxx व्यक्ति महंतजी की बात को नहीं मानता था , उसका उस इलाके में रहना दूभर हो जाता था । एक दिन बांकेबिहारी के मुस्टण्डे चेतू नामक एक किसान को इतना पीटते हैं कि वह दम तोड़ देता है । चेतू का अपराध यह था कि बांकेबिहारी लाल के अखाड़े में होनेवाले यज्ञ के लिए वह चन्दा नहीं दे रहा था । जब चेतू की मृत्यु हो जाती है तब थानेदार कृष्णचन्द्र से रिश्वत लेकर उस मामले को रफा-दफा कर देता है । यद्यपि दारोगाजी एक प्रामाणिक पुलिस अधिकारी थे और कभी रिश्वत न लेते थे , परन्तु सुमन के विवाह के लिए दहेज जुटाने हेतु उन्हें यह घृणित कार्य करना पड़ता है ।

हमारे समाज में धर्म के नाम पर बांकेबिहारी जैसे धूर्त और मक्कार लोग गरीबों का शोषण करते हैं । इस संदर्भ में सुमन का पति गजाधर एक ॿ स्थान पर कहता है — " आजकल धर्म धूर्तों का अड्डा बना हुआ है । इस निर्मल सागर में एक से एक मगर-मच्छ पड़े हुए हैं । भोले-भाले भक्तों को निगल जाना उनका काम है । "[7]

हमारे सांस्कृतिक जीवन में हम अपने आसपास के समाज में बांकेबिहारी जैसे लोगों को देख रहे हैं । अभी कुछ वर्ष पूर्व गुजरात में एक सुप्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदाय के धर्मगुरु की हत्या उनके ही आश्रम के दूसरे साधुओं ने की थी । इस सम्प्रदाय के एक आचार्य का नाम हत्या के सिलसिले में लिया जाता है । प्रदेश के गुण्डे-

बदमाश तथा माफिया तबके के लोग ऐसे आश्रमों में प्रश्रय पाते हैं । अभी कुछ वर्ष पूर्व गुजरात के पीछड़े आदिवासी विस्तार के एक आश्रम का भण्डाफोड़ हुआ था । उस आश्रम के कर्ता-धर्ता अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों के लिए सुन्दर आदिवासी लड़कियों को भेजने का कार्य करते थे । हारिका के केशवानन्दजी का किस्सा भी बड़ा मशहूर है । देवनाग के एक आचार्य स्त्रियों (भक्तिनों) के साथ रंगरेलियां मनाते हुए पकड़े गए थे । इन तमाम घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि "रोगादरबार" में निरूपित बाँकेबिहारीजी जैसे मुस्टण्डे साधुओं, गुरुओं और आचार्यों की जमात आजादी के बाद और भी फूली-फली है । अपने राजनीतिक संबंधों के कारण उनकी शक्ति और सामर्थ्य बहुत बढ़ गए हैं । अज्ञान-मूढ़ जनता उनके अत्याचारों और चमत्कारों से क्षुब्ध है ।

समस्या का एक पहलू यह भी है कि दरोगा कृपाशंकरजी जो रिश्वत लेते हैं उसके पीछे हमारी समाज-व्यवस्था उत्तरदायी है । समाज पद और चरित्र नहीं देखता है, खानदानी और कुलीनता नहीं देखता है, वह तो केवल पैसा देखता है । "सर्वे-गुणा कांचनं आश्रयन्ति" की कहावत आज हमारे समाज-जीवन पर पूर्णतया लागू हो रही है, सरकार के बड़े-बड़े अधिकारी कई बार रिश्वत-घूस इसलिए लेते हैं कि उन्हें अपनी बेटियां ब्याहनी होती हैं । उनके ओहदों के कारण लोगों की अपेक्षाएं बहुत बढ़ी-चढ़ी होती हैं और उन बढ़ी-चढ़ी अपेक्षाओं की आवश्यकता पूर्तिहेतु उन्हें भ्रष्ट रीति-नीति अख्तियार करनी पड़ती है । दूसरे हमारी व्यवस्था इतनी "करप्ट" हो गई है कि प्रामाणिक व्यक्ति चाहकर भी प्रामाणिक नहीं रह पाता । गुजराती के लेखक पन्नालाल पटेल की एक कहानी में दर्शाया गया है कि एक दलित कर्मचारी को अपनी नौकरी बनाए रखने के लिए रिश्वत देनी पड़ती है । कुछ

वर्ष पूर्व बड़ौदा के एक वरिष्ठ पुलिस अफसर का तबादला ऐसे स्थान पर कर दिया गया कि जहाँ उनके घर-परिवार को अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़े । फलतः शनैः शनैः अच्छे और ईमानदार लोगों का हौसला पस्त होने लगता है और वे भी भ्रष्ट लोगों की जमात में आ मिलते हैं ।

सुमन गरीब होते हुए भी अपने चरित्र पर दृढ़ रहती है । वह कहती है — " मैं दरिद्र सही , दीन सही , पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ । किसी भले मानुष के घर में मेरी रोक नहीं । कोई मुझे नीच तो नहीं समझता । वह (भोली वेश्या) कितना ही भोग-विलास करे , पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता । बस अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे । " 8

परंतु यही सुमन धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगती है कि भोली जैसी वेश्याओं के सामने धन ही सिर नहीं झुकाता , धर्म भी उसका पुजारी है । पद्मसिंह जैसे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति के यहाँ भोली को बुलाया जाता है, तब सुमन के हृदय पर कुठाराघात होता है और उसके विचारों में क्रमशः परिवर्तन आने लगता है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुमन में आया हुआ परिवर्तन भोली की संपन्नता के कारण नहीं , अपितु प्रतिष्ठित समाज में उसके आदर को लेकर है । आजकल हमारे समाज का वातावरण भी इसी प्रकार का बनता जा रहा है । मैं एक दिन देख रहा था कि बड़ौदा के एक विस्तार का नामचीन गुण्डा एक पी.एस. आई. की मोटर-साईकिल पर बैठकर जा रहा था । जब समाज के सामान्य लोग इस प्रकार के दृश्यों को देखते हैं , तो उसका बुरा असर उनके दिलो-दिमाग पर पड़ता है ।

इस संदर्भ में डा. पारुकान्त देसाई का निम्नलिखित मंतव्य उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा । यथा- "वर्त-मान

पूंजीवादी व्यवस्था ने समाज की नींव हिला दी है। सर्वत्र नगद-नारायण की पूजा हो रही है। "समरथ को दोष नाहिं गुसाईं" और समर्थ कौन ? धनवान। जब हम देखते हैं कि एक अशिक्षित, भ्रष्टाचारी, कुकर्मकारी, अर्ध-पिशाच, नरभक्षी धनवान गुण्डा सरे आम किसी शिक्षित, संस्कारी, चरित्रवान व्यक्ति की पगड़ी उछाल सकता है, या किसी की भी जीवन-डोरी को कभी भी कटवा सकता है, तो हमारी नज़र में चरित्र का क्या मूल्य रह जाएगा ? ...?

आधुनिक संदर्भ में समाज में "स्टेटस" एवं सामाजिक सम्मान का केन्द्र रुपया हो गया है। धर्म और सत्ता धन में केन्द्रित हो गये हैं। धर्मवाले भी पैसे के सामने सिर झुकाते हैं और सत्तावाले भी; बल्कि धन हो तो इन दोनों की ओर से सम्मान के द्वार खुल जाते हैं। अतः तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों से प्रतिक्रियायित होकर सुमन वेश्या होती है। ठीक उसी प्रकार हमारी बहुत-सी महिलाएँ सुमनवाले रास्ते की ओर अग्रसरित होती हैं। यह अलग बात है कि आज उसका स्वरूप थोड़ा बदल गया है। भद्र समाज की बहुत-सी महिलाएँ किसी-न-किसी बड़े आदमी की अंकशायिनी होती हैं। कुछ महिलाएँ थोड़े-से समय में बहुत-सा धन प्राप्त कर लेने हेतु बड़े-बड़े होटलों में "कालगर्ल" का काम भी करती हैं। हिमांशु श्रीवास्तव कृत "नदी फिर बह चली" उपन्यास में ऐसा जिक्र आया है कि सरकार का कोई अफसर उद्योगपतियों के काम निपटाने के लिए सुन्दर सामाजिक गृहस्थिनों की माँग करता था। एक बार उसके सामने जो महिला प्रस्तुत होती है, वह और कोई नहीं, उसकी अपनी पत्नी थी। अभिप्राय यह कि प्रकारान्तर से एक दूसरे रूप में यह प्रवृत्ति आज भी

चल रही है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने भारतीयों की गुलाम मनोदशा पर भी व्यंग्य किया है और उसे एक भयंकर मानसिक बिमारी की समस्या बताया है । उपन्यास का एक पात्र विट्ठलदास एक स्थान पर कहता है —

" आपकी अंग्रेजी शिक्षा ने आपको ऐसा पददलित किया है कि जब तक यौरोप का कोई भी विद्वान किसी विषय के गुण-दोष न प्रकट करे , तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं । आप उपनिषदों का आदर इसलिए नहीं करते कि वे स्वयं आदरणीय हैं । बल्कि इसलिए करते हैं कि ब्लावेट्स्की और मैक्स-मूलर ने उनका आदर किया है । आपमें अपनी बुद्धि से काम लेने की शक्ति का लोप हो गया है । अभी तक आप तांत्रिक विद्या की बात भी न पूछते थे । अब जो यूरोपीय विद्वानों ने उसका रहस्य खोलना शुरू किया , तो आपको अब उसमें गुण दिखाई देते हैं । यह मानसिक गुलामी उस भौतिक गुलामी से कहीं गई-गुजरी है । आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं , गीता को जर्मन में । अर्जुन को अर्जुना , कृष्ण को कृष्णा और राम को रामा कहते हैं और इस प्रकार अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते हैं । " 10

"सेवासदन" तो स्वतंत्रतापूर्व का उपन्यास है , परन्तु आज़ादी के बाद भी इस गुलाम मनोदशा का अन्त नहीं हुआ है । बल्कि कभी-कभी तो लगता है कि हमारी मानसिक गुलामी , अंग्रेजीयत की दासता आज़ादी के इस दौर में और भी बढ़ गई है । इस अर्थ में भी यह उपन्यास अत्यधिक प्रासंगिक ठहरता है । यह एक हकीकत है कि इधर पन्द्रह-बीस वर्षों में अंग्रेजी-स्कूलों की संख्या में गुणात्मक परिवर्तन आया है । अंग्रेजी हैसियत बढ़ रही

है । इस सन्दर्भ में डा. बरसानेलाल चतुर्वेदी का एक सटीक व्यंग्य देखने योग्य है — " आगे से सरकारी कार्यालयों में / सब काम / हिन्दी में होंगे , ऐसा परिपत्र आया दिल्ली से / अंग्रेजी में ।। " 11

काशी विद्यापीठ , वाराणसी के समाजशास्त्र के प्रोफेसर डा. वंशसिंह त्रिपाठी भारतीयों की इस गुलाम मनोदशा को रेखांकित करते हुए लिखते हैं — " विद्यार्थियों को पश्चिमी समाजशास्त्रियों द्वारा दिये गए समाजशास्त्रीय प्रत्ययों , अवधारणाओं , सिद्धान्तों एवं शोध-प्रविधियों को पढ़ाकर हम अपने शैक्षिकxxxx कर्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं । स्वयं अपने समाज के विभिन्न आयामों एवं पक्षों को समाजशास्त्रीय प्रत्ययों एवं सिद्धान्तों में प्रस्तुत करने की हम चेष्टा ही नहीं करते । यह काम हम पश्चिमी समाजxxxx समाजशास्त्रियों के कंधों पर डाल देते हैं । हमारे समाज के आधार पर जो प्रत्यय और सिद्धान्त वे सृजित करते हैं , उन्हें ही विद्यार्थियों को पढ़ाने में हम अपना गौरव समझते हैं । कुछ उदाहरण — वैष्वीकरण-संकीर्णन (मैकिम-मैरियट) , कुलता-प्रभुत्व सातत्य (लुई डयूमा) जैसी अवधारणाओं का सृजन विदेशी समाजशास्त्रियों ने भारतीय समाज से प्राप्त तथ्यों के आधार पर किया है । जाति को जीते हम हैं , लेकिन जातियों के बीच पद-क्रम कैसे निर्धारित होता है , यह बात हमें फ्रान्सीसी समाजशास्त्री डयूमा बताता है । अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र , नृशास्त्र , और मनोविज्ञान में भी लगभग यही स्थिति है । सम्पूर्ण नृशास्त्रीय साहित्य में विदेशी नृशास्त्रियों का वर्चस्व स्थापित है । इन नृशास्त्रियों में हैमेन्डार्फ , मैकिम मैरियट , मैंडल बम , एफ.जी .बैली , ए.सी. मेयर , रेडक्लिफ , ब्राउन , जी.डी. बिरमैन , वेरियर लेविन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । " 12

हमारी युनिवर्सिटी में संस्कृत भी अंग्रेजी में पढ़ाया जाता है । एक किस्सा स्मृति में कौंध रहा है । हमारे यहाँ

संस्कृत के एक पंडितजी हैं । संस्कृत में बातचीत करने की क्षमता रखते हैं । परन्तु संस्कृत के कारण उनका "डिविज़न" खराब हुआ था , क्योंकि संस्कृत के प्रश्नों के उत्तर अंग्रेजी में लिखने थे , भाषांतर अंग्रेजी में करना था और अंग्रेजी उनका ठीक नहीं था । जब हम इस प्रकार का माहौल देखते हैं तो नब्बे-सौ साल पहले कही हुई विट्ठलदास की बात हमें आज भी प्रासंगिक लगती है ।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्यता , साम्प्रदायिक संकुचितता , इन दोनों कौमों में पारस्परिक अविश्वास जैसी समस्याओं को प्रेमचन्दजी ने "सेवासदन" उपन्यास में बखूबी उभारा है । उपन्यास में अबुलवफा नामक एक मुस्लिम नेता हिन्दुओं के सन्दर्भ में कहता है — " आलि-जाह मुझे रात को आफताब का यकीन हो सकता है , पर हिन्दुओं की नेकनीयत पर यकीन नहीं हो सकता । " [13]

उपर्युक्त मनोवृत्ति और हिन्दू-मुस्लिम समस्या आज भी उतनी ही बरकरार है , xxxx बल्कि यह ज़हर अब शहरों से गाँवों की ओर भी संक्रमित हो रहा है और हमारा पूरा वातावरण ज़हरीला हो रहा है । आज़ादी के बाद अलीगढ़ , मेरठ , दिल्ली , मुंबई , अहमदाबाद , बड़ौदा जैसे शहरों में कई-कई बार कौमी दंगे हो चुके हैं । पहले ये कौमी दंगे बड़े शहरों तक महदूद थे , अब तो वाघोडिया , डभोई , सिनोर , जंबुसर , पालेज (ये सभी बड़ौदा तथा भरुच जिले के गांव हैं) जैसे कस्बों और गांवों में भी यह ज़हर पहुँच चुका है । पहले कहा जाता था कि अंग्रेज लोग अपने राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए हिन्दू-मुस्लिम में फूट डाल रहे हैं । अब आज़ादी के उपरांत राजनीतिक पार्टियों के लोग अपने-अपने "वोट-बैंकों" को बढ़ाने के लिए इस संकुचित

साम्प्रदायिकता और विदेशी नौकरी-भावनाओं की हवा दे रहे हैं । इस सन्दर्भ में यह उपन्यास आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है । इस उपन्यास के सन्दर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय लिखते हैं —

" प्रेमचन्द रिसीव्ड मन इम्पेटस फ्रोम द सक्सेस आफ सेवासदन. ही प्लन्ज्ड फर्दर औन हिज नेक्स्ट नोवेल वीथ विगर एण्ड स्ट्रेन्थ, वीथ आर्ड्यु हेर मोर शार्प , हीज आब्जरवेशन कीन एण्ड द क्राफ्ट्समैन इन हिम फ्रिलोस टु आर्पन द स्कील. हीज एसेज़ एण्ड स्टोरीज़ रीटन ड्युरिंग द टाइम शौ हिज क्रीटीकल अप्रोच अबाउट द सोसायटी, पोलिटिक्स एण्ड लिटरेचर. " 14

यद्यपि "सेवासदन" प्रेमचन्दजी की प्रारंभिक कृतियों में से है, तथापि सामाजिक समस्याओंकी पकड़ तथा उनके यथार्थ चित्रण की दृष्टि से उनका यह एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है , और उसमें निरूपित सामाजिक , धार्मिक , राजनीतिक समस्याओं की दृष्टि से यह आज भी उतना ही प्रासंगिक एवं जीवन्त उपन्यास है ।

वरदान :
======

"वरदान" का हिन्दी में प्रकाशन सन् 1920 में हुआ था , इस प्रकार हिन्दी में प्रकाशित होने के क्रम से यह "सेवासदन" के बाद की कृति है ; परन्तु वास्तविकता यह है कि "जलवा-ईसार" शीर्षक से यह उपन्यास उर्दू में सन् 1912 में प्रकाशित हो चुका था । इस उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने प्रतापचन्द्र और विरजन के प्रेम , उसकी असफलता तथा अन्त में उसके उदात्तीकरण ( ) को चित्रित किया है । प्रतापचन्द्र शिक्षित , मेधावी एवं गुणवान युवक है । वह विरजन नामक एक युवती को प्रेम करता है । उसमें जातिगत रूप से कोई अड़चन नहीं है , परन्तु आर्थिक विषमता के

कारण उसका विवाह विरजन से नहीं हो पाता है । प्रताप के पिता मुंशी शालिग्राम साधु-सन्तों की सेवा और दान-धर्म में विश्वास रखते थे । अपनी परमार्थिता के कारण उनके ऊपर बहुत-सा कर्ज़ हो गया था । प्रताप का जन्म शालिग्रामजी की वृद्धावस्था में हुआ था । एक दिन वे कुंभ के मेले में जाते हैं और फिर लौटकर नहीं आते । अतः दरिद्रावस्था में प्रताप की माँ सुवामा उसे पाल-पोसकर बड़ा करती है, शिक्षा और संस्कार देती है । सुवामा सबकुछ बेच-बाचकर पति का कर्ज़ चुका देती है । केवल मकान बच जाता है । वह मकान के दो हिस्से कर देती है । एक में अपने बेटे के साथ खुद रहती है और दूसरा किराये पर उठाती है । मुंशी संजीवनलाल तथा उनकी पत्नी सुशीला उनके किरायेदार हैं । विरजन (वृजरानी) उनकी सुपुत्री है । एक मकान में साथ रहने के कारण प्रताप और विरजन में बचपन से ही प्रणय के अंकुर फूटते हैं, परन्तु "लरिकाई का यह प्रेम" परिणय में नहीं बदल सका, क्योंकि संजीवनलाल और सुशीला विरजन का विवाह डिप्टी श्यामाचरण के लड़के कमलाचरण से कर देते हैं । कमलाचरण कबूतरबाज, पतंगबाज और एक आवारा किस्म का लड़का है । केवल आर्थिक विषमता के कारण प्रतापचन्द्र जैसा मेधावी और गुणवान युवक विरजन को प्राप्त न कर सका और विरजन का विवाह कमलाचरण जैसे दुश्चरित्र व्यक्ति से हो गया ।

हमारे यहाँ शादी-ब्याह में गुण नहीं पर पैसा देखा जाता है । यह बात प्रेमचन्द को शुरू से ही अखरती थी । आर्थिक विषमता के कारण कई विरजनों को अकाल वैधव्य का शिकार होना पड़ता था । अनमेल विवाह हमारे समाज की है एक भयंकर बीमारी है । और प्रस्तुत उपन्यास इसी बीमारी के दुष्परिणामों को रेखांकित करता है ।

उपन्यास का पुनर्मूल्यांकन करने से पूर्व उसके कथानक पर एक विहंगम दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा । जिस समय यह

उपन्यास लिखा गया वह समय देशभक्ति का था । लोकमान्य बाल-गंगाधर तिलक के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिए देश सन्नद्ध हो रहा था । सुवामा निःसंतान थी । अतः देवीमाँ से वरदान माँगती है कि वह उसे ऐसा पुत्र प्रदान करे जो देशसेवा में अपना जीवन समर्पित कर दे । देवी के वरदान से सुवामा प्रतापचन्द्र को पुत्र रूप में प्राप्त करती है । प्रताप के जन्म के बाद मुंशी शालिग्राम कुंभ के मेले से कहीं चले जाते हैं और वापस नहीं लौटते । सुवामा किसी प्रकार गरीबी में दिन काटते हुए अपने पुत्र का लालन-पालन करती है । बाद की घटनाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं ।

मुंशी संजीवनलाल तथा सुशीला के परिवार का सुवामा के यहाँ किराएदार के रूप में आना, उनकी लड़की विरजन और प्रताप के बीच बचपन से ही प्रेम-भावना का पैदा होना, गरीबी के कारण प्रेम में असफलता, विरजन का डिप्टी श्यामाचरण के पुत्र कमलाचरण से विवाह हो जाना, बाद में कमलाचरण की आवारगी का पता चलना, संजीवनलाल और सुशीला का इस बात को लेकर दुःखी होना, विरजन का गौना, विरजन के प्रेम के कारण कमला-चरण का कुछ समय के लिए सुधर जाना, विरजन को भुलाने के लिए प्रताप का बनारस छोड़कर प्रयाग जाना, प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ाई तथा खेलकूद दोनों में नाम निकालना ; प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी के रूप में उभरना, विरजन और कमलाचरण के प्रेम को देखकर प्रसन्न होना, विरजन के प्रेम के कारण कमलाचरण का पढ़ाई में मन न लगना, उसको पढ़ाई के लिए प्रयाग भेजा जाना, विरजन से दूर होते ही कमलाचरण में पुनः आवारगी के लक्षणों का प्रकट होना, बोर्डिंग के बाग के माली की लड़की सरयू पर डोरे डालना, सरयू से मिलने उसके घर जाना, सरयू के पिता के आने से दीवार फाँदकर भाग जाना, बिना टिकट गाड़ी में बैठना, टिकट-चेकर के आने पर

चलती गाड़ी से कूदते हुए गिरकर मर जाना , डिप्टी श्यामाचरण की डाकुओं द्वारा हत्या , विरजन की सास का पगला जाना , कमलाचरण की मृत्यु के बाद प्रताप के मन में पुनः विरजन के लिए प्रेम का जागना , परन्तु विरजन के वैराग्य से प्रभावित होकर संन्यासी बनकर देशसेवा का व्रत धारण करना , इस प्रकार प्रताप का बालाजी के रूप में परिवर्तन , विरजन का एक कवयित्री के रूप में उभरना , विरजन का अपनी सहेली माधवी को प्रेरित करना कि वह बालाजी को पुनः गृहस्थ बनावे , माधवी का इस दिशा में अग्रसर होना , बालाजी के सामने प्रेम-प्रस्ताव , बालाजी की विवाह के लिए सहमती, परन्तु अंततोगत्वा बालाजी को देखकर माधवी का हृदय-परिवर्तन, स्वयं योगिनी बनकर बालाजी के साथ देशसेवा के काम में लग जाना, जैसी अनेकों घटनाएं इस उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने वर्णित की हैं ।

इस उपन्यास के सन्दर्भ में , उसकी अपरिपक्वतर और अकलात्मक नियोजना के सन्दर्भ में डा. हंसराज रहबर उसकी कटु आलोचना करते हुए लिखते हैं -" कहना नहीं होगा कि कथानक बहुत ही लम्बा और जटिल है । इसमें पात्र तो बहुत-से हैं ; लेकिन कोई भी हाड़-मांस के मनुष्य की तरह उभरकर सामने नहीं आता । सभी लेखक के हाथ की कठपुतलियां बनकर रह गए हैं । जब वह उनकी उपयोगिता नहीं देखता , तो तोड़-मरोड़कर फेंक देता है , अथवा अकारण मृत्यु करवा देता है । एक छोटे-से उपन्यास में इतनी मृत्युएं बहुत अखरती हैं । और घटना-प्रवाह भी स्वाभाविक नहीं है । कमलाचरण विरजन के प्रभाव से अनायास सुधर जाता है और उसके उपरांत प्रयाग पहुंचकर फिर आवारा और दुष्ट बन जाता है और कुचक्र में फंसकर मर जाता है । उपन्यास के आरंभ से ही पाठक के मन में यह आशा बंधती है कि प्रताप अर्थात् बालाजी आदर्श देशभक्त के रूप में उनके सामने आयेगा और वह उसे देशसेवा का महान कार्य करते

देखेगा । परन्तु यह सबकुछ नहीं होता । पहले वह दुर्बल चरित्र का ईर्ष्यालु युवक है । प्रयाग पहुंचकर वह अचानक प्रसिद्ध हो जाता है । और फिर विधवा विरजन को विचारमग्न देखकर उसका संन्यासी बनना तो एकदम चमत्कार जान पड़ता है, जैसे बस देवी के ही वरदान ने अपना असर दिखाया हो । उसके उपरांत देशसेवा का भी कोई स्पष्ट रूप सामने नहीं आता । आंख झपकते ही उसे प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है ; जैसे लेखक की कलम ने ही उसे नेता बना दिया है । ऐसे नेता उपन्यासों में ही धरे रह जाते हैं, पाठकों को प्रभावित नहीं कर पाते ।" [15]

वस्तुतः वरदान प्रेमचन्दजी की प्रारंभिक कृति ही है । प्रारंभिक होने के कारण उसमें हमें प्रेमचन्द का आदर्शवादी रोमांटिक दृष्टिकोण मिलता है । यह सही है कि उपन्यास के मुख्य पात्रों में कुछ अवास्तविकता आ गई है ; परन्तु मुंशी शालिग्राम, सुवामा, मुंशी संजीवनलाल, डिप्टी श्यामाचरण, सुशीला, प्रेमवती आदि पात्र पर्याप्त जीवंत हैं । हमें प्रारंभ से ही इस बात का आभास मिल जाता है कि समाज को सूक्ष्मता से देखने वाली जो आंख प्रेमचन्दजी के पास थी, हिन्दी में अन्यत्र उसका अभाव-सा दिखता है । निरालाजी ने ठीक ही कहा था — "आंखें लोगों के पास आयं तो आंखि के पास आयं ।" [16]

अतः डा. हंसराज रहबर के इस मत से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकते कि "वरदान" के सभी पात्र लेखक के हाथ की कठपुतलियां हैं, और हाड़-मांस के मनुष्य की तरह उभरकर सामने नहीं आते । स्वयं डा. रहबर प्रताप को एक दुर्बल-चरित्र पात्र कहते हैं । प्रताप की चरित्रगत या मानवीय दुर्बलताएं ही उसे एक मनुष्य के रूप में उभारती हैं । कमलाचरण का चरित्र-चित्रण भी अत्यंत स्वाभाविक है ।

वस्तुतः वह एक बड़े बाप का बिगड़ा हुआ बेटा है। विरजन के सौन्दर्य से अभिभूत होकर कुछ समय के लिए उसमें कुछ सुधार के चिह्न दिखते हैं, परन्तु उस प्रभाव-केन्द्र के ओझल होते ही वह पुनः अपनी पटरी पर आ जाता है। ऐसे चरित्रों को कोई आघातात्मक प्रसंग ही सुधार सकता है। प्रयागागमन की काल-मृत्यु से कदाचित् वह राह पर आता, किन्तु उसके पूर्व उसकी आकस्मिक मृत्यु हो जाती है। अतः ये पात्र एकदम कठपुतली-से नहीं हैं, हाँ प्रारंभिक कृति होने के कारण उसमें कुछ कमजोरियाँ अवश्य हैं, जिन पर प्रेमचन्द क्रमशः काबू पाते गए हैं।

जहाँ तक उपन्यास की मुख्य समस्या का प्रश्न है, वह समस्या अनमेल विवाह की है। "सेवासदन" तथा "निर्मला" जैसे उपन्यासों में, जहाँ दहेज न दे पाने की असमर्थता के कारण अनमेल विवाह की त्रासदी उत्पन्न हुई है, वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में यह त्रासदी आर्थिक तो है, परन्तु उसका समीकरण कुछ उलट गया है। यहाँ प्रताप, जो विरजन को बचपन से ही चाहता है और विरजन भी उसे प्रेम करती है। परन्तु इन दोनों का प्रणय परिणय में परिणत नहीं हो सकता, क्योंकि प्रताप गरीब घर का लड़का है। किसी जमाने में उनके यहाँ जाहोजलाली थी, परंतु पिता की उदारता और दानवीरता के कारण के कारण उन पर काफी कर्ज हो जाता है। अतः पिता भाग जाते हैं। कर्ज की जिम्मेदारी प्रताप की माँ सुवामा पर आ जाती है। सुवामा सबकुछ बेचकर पति का कर्ज चुका देती है; पर इसी उपक्रम में गरीबी में रहने पर विवश हो जाती है। यहाँ उर्दू के कवि हाली का एक शेर स्मृति में कौंध जाता है —

" फिर औरों की तकते फिरोगे सखावत
बढ़ाओ न हद से सखावत ज्यादा। " 17

इस प्रकार गरीबी के कारण प्रताप विरजन को नहीं प्राप्त कर सका और उसका विवाह कमलाचरण नामक एक दुश्चरित्र व्यक्ति के साथ हो गया । कमलाचरण के पिता श्यामाचरण डिप्टी कलक्टर हैं । कमलाचरण बड़े बाप का एक बिगड़ा हुआ बेटा है । प्रस्तुत उपन्यास में निरूपित यह समस्या आज भी उतनी ही प्रासंगिक है । बल्कि भौतिकता के व्यामोह में इस प्रक्रिया की गति और भी तेज हो गई है । लोगबाग अपनी लड़कियों को भौतिकवादी रेलमपेल और ऐश्वर्ययुक्त जीवन के लिए , न आव देखते हैं न ताव , और उनकी शादी बड़े घरों में कर देते हैं , जहां कई बार उन्हें नारकीय जीवन बिताना पड़ता है । योग्य , प्रामाणिक और सुशील युवक के स्थान पर मां-बाप कई बार बड़े घर के मोह में अपनी बेटियों का ब्याह बड़े बाप के बिगड़ैल बेटों से कर देते हैं । इस कारण उनकी जिन्दगी नरक हो जाती है । भौतिकता की इस अंधी दौड़ में एक परिमाण और जुड़ा है । वह परिमाण है ग्रीनकार्ड-धारक विदेश में बसने वाले एन. आर. आई. युवकों का । ऐसे युवकों के लिए मां-बाप बिलकुल अंधे हो जाते हैं । अपने विवेक और न्याय-बुद्धि को ताक पर रखकर , वे कुछ भी देखे भाले बिना ऐसे सुरतियों से अपनी बेटियों का ब्याह देते हैं ।

बाद में विदेश में उन लड़कियों को भयंकर यातना और घुटनापूर्ण स्थितियों से गुजरना पड़ता है । सम्प्रति गुजराती दैनिक "संदेश" में एक अहवाल प्रकाशित हुआ था , जिसमें एक विदेशी एन.आर. आई. सुरतिया , अपने विदेशी बिजनेस पार्टनर के साथ समलैंगिक संबंध रखता था । यह बात वहां जाकर न केवल उसने अपनी पत्नी को बताई , बल्कि उसकी आंखों के सामने उन दोनों ने समलैंगिक संबंधों को भोगा और उसने अपनी पत्नी से

यहाँ तक कहा कि उसे भी इस "ग्रुप-सेक्स" के आनंद में सम्मिलित होना होगा । [18]

आजकल टी.वी. धारावाहिकों का समय है । सम्प्रति दो ऐसे धारावाहिक चल रहे हैं जिनमें माँ-बाप अमीर घर में अपनी बेटी तो देते हैं पर अपने होनेवाले दामाद का चाल-चलन कैसा है या वे कैसे हैं यह देखने की तनिक चिन्ता भी नहीं करते । ये धारावाहिक हैं — "आशीर्वाद" और " अपनी" । कई बार ये धारावाहिक समसामयिक जीवन का आईना -से लगते हैं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचन्द युग में भी माँ-बाप धन-दौलत और वैभव के मोह में पैसापात्र अपात्रों को अपनी कन्या दे देते थे और यह सिलसिला आज भी जारी है जिसे हम उपर्युक्त उदाहरणों में भलिभाँति देख सकते हैं । इस प्रकार प्रासंगिकता की दृष्टि से विचार करें तो यह उपन्यास आज भी उतना ही प्रासंगिक प्रतीत होता है । बल्कि यह कहना अत्युक्ति न होगा कि एन.आर. आई के आयाम का विचार करें तो और भी ज्यादा प्रासंगिक हो गया है ।

प्रतिज्ञा :

"प्रतिज्ञा" का हिन्दी में प्रकाशन तो सन् 1929 में हुआ , परन्तु सन् 1906 में यह उपन्यास उर्दू में " हमखुर्मा-ओ-हमसवाब " नाम से प्रकाशित हो चुका था । बाद में "पेमा" नाम से उसका हिन्दी में अनुवाद किया गया था । "प्रतिज्ञा" उसीका संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप है । इसमें लेखक ने विधवा-विवाह की समस्या को उठाया है । यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि उस समय नवजागरण से संबंधित आंदोलन चल रहे थे , उनमें विधवा-विवाह का मुद्दा एक प्रमुख मुद्दा था ।

संक्षेप में उसकी कथावस्तु इस प्रकार है —

अमृत और दाननाथ ये दोनों परम मित्र हैं। वे दोनों प्रेमा नामक एक लड़की से प्यार करते हैं। प्रेमा अमृत की साली है। बड़ी बहन की मृत्यु हो जाती है, अतः उसके स्थान पर प्रेमा की शादी अमृत से निश्चित की जाती है। दाननाथ इस आघात को चुपचाप सहन कर लेता है। परंतु अमृतराय एक दिन विधवा-विवाह से सम्बद्ध एक व्याख्यान सुनकर अपना विचार बदल देता है। वह अपने मन में तय कर लेता है कि अपना शेष जीवन वह दीन-दुखिया विधवाओं की सेवा में अर्पित कर देगा। अतः उनके लिए वह एक विधवाश्रम की स्थापना करता है। प्रेमा के पिता एक रईस आदमी हैं। वे बड़े भले और सज्जन व्यक्ति हैं। अमृतराय की प्रतिज्ञा से उन्हें दुःख तो होता है, पर बाद में वे प्रेमा की शादी दाननाथ से कर देते हैं। प्रेमा की एक सहेली है जिसका नाम है पूर्णा। पूर्णा का पति वसंतकुमार होली के दिन भंग पीकर स्नान करने जाता है और गंगा नदी में डूब जाता है। पूर्णा विधवा हो जाती है। अतः वह भी प्रेमा के पिता बदरीप्रसादजी के यहाँ रहने लगती है। बदरीप्रसाद का लड़का कमलाप्रसाद कंजूस, दुराचारी और नीच व्यक्ति है। वह पूर्णा पर कुदृष्टि रखता है। एक दिन मौका पाकर वह पूर्णा पर बलात्कार करने का प्रयत्न करता है। पूर्णा उसे कुर्सी मारकर भाग जाती है। उसके उपरांत पूर्णा अमृतराय के विधवाश्रम में रहने लगती है। इस घटना के बाद कमलाप्रसाद का स्वभाव बदल जाता है और वह नीच प्रकृति को छोड़कर एक भले मनुष्य-सा जीवन बिताने लगता है।

यह उपन्यास सन् 1907 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। उस समय उसका शीर्षक था — " प्रेमा "। इस उपान्यास के संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय लिखते हैं — "सपेस्ट सम मेजर्स आफ आर्बिट्रेरी हैंडलिंग आफ द सिच्युएशंस, द

नोवेल इन इट्स कान्स्ट्रक्शन एण्ड थीम स्ट्राइक्स द रीडर इन वेरियस वेज़. इट प्रोवाइड्स एन एवसोर्बिंग स्टोरी , एन इम्पोर्टेंट इम्पोर्टेण्ट ट्रेट टु ड्रा द रीडर्स टु हेर देन फोन्ड आफ प्योर एन्टरटेइनमेण्ट. प्रेमचन्द वाज़ द फर्स्ट ओथर टु सो पावरफुली एण्ड इफेक्टीवली एडवोकेटेड द रीमैरिज आफ द विडोज़ एण्ड सोट टु मोल्ड द व्यूज़ आफ हीज रीडर्स अवाउट इट्स ट्रेडिशनल डिसएपुवल. द नोवेल हेज ए मच लार्जर कैनवास देन इट्स प्रीडीसेसर्स . द विमैन कैरेक्टर्स आफ द नोवेल आल्सो फोरशैडो द वुमेन्स इनडिविजुआलिटी एण्ड अर्ज टु प्रोटेस्ट वेट वेर टु इमर्ज इन सेवासदन लेटर. "19

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने विधवा समस्या को लिया है । उपन्यास का नायक अमृतराय एक आदर्शवादी युवक बताया है । वह विधवाओं के कल्याण के लिए एक आश्रम की स्थापना करता है । जिस समय इस उपन्यास को लिखा गया , उस समय भारतीय सवर्ण समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय और कष्टजनक थी । सम्प्रति दीपा मेहता ने सन् 1930 के समय की वाराणसी की विधवाओं को लेकर "वाटर" नामक एक फिल्म बनाना चाही थी । इस फिल्म में विधवाओं की स्थिति बड़ी लोमहर्षक थी । वाराणसी में इस फिल्म को लेकर आर.एस.एस. तथा विश्व हिन्दू परिषद वालों ने काफी कोहराम मचाया । फिल्म का शूटिंग रोक दिया गया था ।

परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उसमें निरूपित विधवाओं की समस्या बड़ी ही कष्टजनक और विस्फोटक है । जब 1930 की यह स्थिति है , तो 1906 में तो स्थिति और भी भयावह होगी । अतः प्रेमचन्दजी जैसे प्रगतिवादी लेखक द्वारा इस विषय का उठाया जाना स्वाभाविक ही म समझा जायगा ।

अब सवर्ण समाज में विधवा-विवाह होने लगे हैं । यद्यपि पढ़े-लिखे और सुशिक्षित सवर्ण लोग अब अपनी विधवा बहन-बेटियों का पुनर्विवाह करा देते हैं, तथापि विधवा-विवाह के प्रति दुराग्रह और पूर्वाग्रहx पूर्वाग्रह अभी कम नहीं हुए हैं । ऐसे विवाहों को सम्मान एवं पवित्रता की दृष्टि से नहीं देखा जाता । बहुत-से रूढ़िग्रस्त लोग ऐसे विवाहों को लेकर आज भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं । दूसरे ऐसे विवाह भी तभी होते हैं, जब वैवाहिक जीवन के प्रारंभ में से ही पति-मृत्यु की दुर्घटना होती है । पैंतीस-चालीस साल की विधवाओं के विवाह के प्रति आज भी उक्त समाज में उदासीनता का वातावरण दृष्टिगत होता है । अतः इस दृष्टि से अब भी कुछ हद तक उपन्यास की प्रासंगिxx प्रासंगिकता बनी रहती है ।

डा० हंसराज रहबर ने पूर्णा के पति की गंगा में डूब जाने-वाली घटना को अस्वाभाविक बताया है । उनका कथन है कि मानो पूर्णा को विधवा बनाने के लिए ही उसे भंग पिलाकर स्नान करने भेजा गया हो ।[20] परन्तु इसे हम अस्वाभाविक नहीं कह सकते । आज भी कई बार ऐसी घटनाएँ अखबारों में प्रकट होती हैं कि कोई व्यक्ति शराब, ताड़ी या भाँग के नशे में धुत होकर तालाब, नदी या कैनाल में डूब जाता है । प्रेमचन्द ने जिस क्षेत्र को लिया है, उसमें भाँग का भक्षण करना एक आम बात है । बड़ौदा में भी होली या शिवरात्रि पर भाँग पीकर नर्मदा या मही नदी में युवा लड़कों के डूब जाने के किस्से प्रतिवर्ष अखबारों में दर्ज होते रहे हैं ।

कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा एक जीवंत और सशक्त पात्र है । वह अपने पति की दुर्नीति का विरोध करती है और स्त्री के अधिकारों के लिए लड़ती है । आज भी सवर्ण समाज में

बहुत-सी ऐसी नारियाँ पायी जाती हैं, जो पति की धूर्तता और बदमाशी के आगे घुटने टेक देती है और घुट-घुट कर किसी तरह जिन्दगी के दिन काटती है। अतः कहा जा सकता है कि सुमित्रा जैसी जुझारू और जीवट वाली स्त्रियों की आxx आवश्यकता आज भी बनी हुई है।

सुमित्रा का पति कमलाप्रसाद एक धूर्त व्यक्ति है। पूर्णा के प्रति उसकी जो वासना है, उसे वह "प्रेम" और "ईश्वर" की प्रेरणा जैसे शब्दों से नवाजता है। यथा – "पूर्णा! एक पत्ता भी उसके हुक्म के बिना हिल नहीं सकता। सुमित्रा मुझसे नाराज है तो यह ईश्वर की इच्छा है, तुम मुझ पर मेहरबान हो, तो यह भी ईश्वर की इच्छा है।" 21

आज भी हमारे समाज में बहुत-से कमलाप्रसाद जैसे लोग पाये जाते हैं; जो अपने हर जायज, नाजायज काम के लिए धर्म, ईश्वर, प्रेम, नीति आदि का हवाला देते हैं।

समग्रतया कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास प्रेमचन्दजी के प्रारंभिक दौर का उपन्यास है, अतः वस्तु और शिल्प की दृष्टि सेxइसमें अनेक क्षतियाँ पायी जाती हैं; तथापि जहाँ तक उसमें निरूपित सामाजिक समस्याओं का प्रश्न है; उपन्यास की प्रासंगिकता कुछ हद तक आज भी बनी हुई है।

प्रेमाश्रम :

प्रेमx "प्रेमाश्रम" का प्रकाशन सन् 1920 में हुआ था। यह किसानों एवं जमींदारों के पारस्परिक संबंध एवं संघर्ष को रेखांकित करने वाला एक बहुकथाआयामी उपन्यास है। उसमें

ग्रामीण एवं नागरिक जीवन के नाना स्तरों एवं व्यवसायों का तथा उनकी टकराहट का व्यापक चित्रण हुआ है । डा. एस.एन. गणेशन ने प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में लिखा है —

"भारत की सामान्य जनता का जागरण और अपने हक के लिए लड़ाई भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग है, और इस जागरण पर लिखित प्रथम श्रेष्ठ उपन्यास के रूप में "प्रेमाश्रम" महत्त्व-पूर्ण रचना है ।" 22

प्रेमचन्दजी का "सेवासदन" उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है कि उनके परवर्ती उपन्यासों के बीज "सेवासदन" में हमें किसी-न-किसी रूप में मिल जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में मनोहर और बलराज नामक किसानों का जो चित्रण मिलता है, "सेवासदन" में चित्रित चैतू के ही ये विकसित रूप हैं । वे चैतू की भाँति ही जमींदारों के जुल्म और अन्याय का प्रतिकार करते हैं । " इस बृहद उपन्यास में सदियों से पददलित कृषक समाज, उसकी अज्ञानता, भीरुता, जमींदार और उसके कारिन्दों के अत्याचार तथा इसके समाधान रूप में "हाजीपुर" जैसे आदर्श ग्राम तथा उसमें "प्रेमाश्रम" की स्थापना आदि को चित्रित किया गया है । उपन्यास के उत्तरार्द्ध की स्थापना प्रेमचन्दजी की आदर्शवादिता एवं तज्जनित अति-भावुकता के अनुरूप हुई है । " 23

"प्रेमाश्रम" की प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व उसकी कथा पर एक विहंगम दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा । "प्रेमाश्रम" की कथा बहुआयामी है । उसमें एक तरफ जमींदारों की कथा है, तो दूसरी तरफ मनोहर और बलराज जैसे किसानों की स्थिति का आलेखन है । तीसरी तरफ सरकारी मशीनरी — मैजिस्ट्रेट, दारोगा, पुलिस आदि का चित्रण है; तो चौथी

तरफ देश के राजनीतिक फलक को भी उद्घाटित किया गया है ।

ज्ञानशंकर लखनपुर का जमींदार है । उसके चाचा प्रभाशंकर है । लखनपुर की जमींदारी के दो मालिक हैं — ज्ञानशंकर और प्रभाशंकर । ज्ञानशंकर के परिवार में तीन व्यक्ति हैं और प्रभाशंकर के परिवार में आठ व्यक्ति हैं । अतः ज्ञानशंकर चाहता है कि जमींदारी का बँटवारा यथाशीघ्र हो जाय । ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या एक सुशील महिला है । ज्ञानशंकर की अलग्योझा वाली बात से वह प्रसन्न नहीं है, परन्तु ज्ञानशंकर एक तिकड़मी और पाखंडी व्यक्ति है । विद्या के न चाहते हुए भी बँटवारा हो जाता है । विद्या के भाई के स्वर्गवास हो जाने पर ज्ञानशंकर को आंतरिक रूप से प्रसन्नता ही होती है, क्योंकि वह सोचता है कि अब अपने ससुर रायसाहब की जायदाद पर भी उसका अधिकार हो जायगा । कृष्णलीला का नाटक रचाकर वह विद्या की बहन गायत्रीदेवी को भी अपने विकार और विलास का साधन बनाने के लिए फँसाता है । विद्या को जब इस बात का पता चलता है, तब वह बहुत दुःखी होती है और इसी दुःख में एक दिन दम तोड़ देती है । ज्ञानशंकर अपने श्वसुर रायसाहब को भी विष देकर मार डालने की योजना बनाता है, परन्तु उसमें वह असफल रहता है । गायत्री पहले तो ज्ञानशंकर के चंगुल में फँसती है, परन्तु बाद में ज्ञानशंकर के इरादों को भाँप लेती है और पश्चात्ताप की आग में जलते हुए उसकी भी मृत्यु हो जाती है ।

गायत्रीदेवी अपनी जमींदारी ज्ञानशंकर के पुत्र मायाशंकर के नाम कर देती है ; परन्तु मायाशंकर को जमींदारी का मोह नहीं है । वह अपनी सारी जमींदारी लोगों के नाम कर देता है । गवर्नर के सामने वह कहता है — " मेरी धारणा है कि मुझे किसानों की गर्दनों पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार

नहीं है । मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूं ; जो प्रथा , नियम और समाज-व्यवस्था ने मुझे दिए हैं । मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधनों से मुक्त भी करता हूं , वे न मेरे आसामी हैं और न मैं उनका ताल्लुकेदार हूं । वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं , मेरे भाई हैं । आज से वे अपनी जोत के स्वयं जिम्मेदार हैं । मैं बैरिस्टर डा. इरफानअली से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरी इस विषय में सहायता करें और जायदाद और कानून की समस्याओं के तय करने की व्यवस्था करें । " 24

मायाशंकर के इस व्यवहार से ज्ञानशंकर को ठेस पहुंचती है । विद्या और गायत्री की भी मृत्यु हो गई है । ऐसी अवस्था में चारों ओर से निराश होकर ज्ञानशंकर आत्महत्या कर लेता है ।

"प्रेमाश्रम" उपन्यास में जमींदार ज्ञानशंकर की कथा के साथ-साथ मनोहर और बलराज की कथा भी चलती है । मनोहर एक अच्छा खातापीता किसान है । वह पुरानी चाल का आदमी है ; किन्तु उसका लड़का बलराज हर बात में अन्याय का सामना करने के लिए उद्यत रहता है । बलराज एक साहसी युवक है और उसने अखबारों के माध्यम से रूस की क्रान्ति के बारे में भी सुन रखा है । एक स्थान पर वह कहता है —

" तुम लोग तो मेरी हंसी उड़ाते हो , मानो काश्तकार कुछ होता नहीं । वह जमींदार की बेगार करने के लिए ही बनाया गया है । लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है , उसमें लिखा है कि काश्तकारों का ही राज है , वह जो चाहते हैं , करते हैं । उसीके पास कोई और देश बलगारी है , वहाँ अभी हाल की बात है , काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है , और किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है । " 25

ज्वालासिंह उस इलाके का मैजिस्ट्रेट है । वह ज्ञानशंकर का मित्र है । अधिकारियों के दौरों के समय कुछ गाड़ीवानों से बेगार करवाया जाता है । बलराज ज्वालासिंह के पास जाकर उसकी शिकायत कर देता है । अतः ज्वालासिंह बेगार को बन्द करने का हुक्म देता है । परन्तु ज्वालासिंह को गौसखां दारोगा पढ़ाता है । गौसखां के कान भरने पर ज्वालासिंह भड़क जाता है और बलराज को झूठे अभियोग में फंसाना चाहता है , परन्तु गांववाले बलराज के साथ थे , अतः बलराज पर कोई मुकदमा नहीं बन पाता और उसे छोड़ देना पड़ता है ।

गौसखां किसी-न-किसी तरह से बलराज को परेशान करना चाहता है । एक बार बलराज की मां बिलासी चरागाह में अपने मवेशियों को चरा रही थी । उस समय गौसखां वहां पहुंचता है और उसे जानवरों को वहां से हटा देने के लिए कहता है । बिलासी के विरोध करने पर गौसखां के पिछलग्गू पुलिस-कर्मचारी उसे जोर से धक्का देते हैं और बिलासी जमीन पर गिर पड़ती है । बिलासी की स्थिति को देखकर उसका पति मनोहर , उस समय तो खून का घूंट पीकर रह जाता है , परन्तु रात के समय वह गंड़ासे से गौसखां का काम तमाम कर देता है । इस काम में बलराज ने भी उसका साथ दिया था । परन्तु थाने पर वह अकेला जाता है और सारा दोष अपने ऊपर ले लेता है । इस हत्या के संबंध में बलराज को भी गिरफ्तार कर लिया जाता है, अन्य कई व्यक्तियों को भी पकड़ा जाता है । ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर को भी गिरफ्तार किया जाता है , परन्तु बाद में वह अपने चाचा के प्रयत्नों से छूट जाता है । मनोहर जब देखता है कि उसके कारण गांव के निर्दोष लोग फंसे हुए हैं , तो आत्मग्लानि और उद्वेग में वह भी आत्महत्या कर लेता है ।

मनोहर की आत्महत्या से उसकी पत्नी बिलासी को बहुत दुःख पहुँचता है। गौसखाँ की जगह फैजुल्ला नियुक्त होता है। वह गौसखाँ से भी ज्यादा खराब और सख्त था। मालगुजारी और लगान देने की शक्ति किसानों में नहीं थी। फैजुल्ला उन पर अत्याचार करता है। चौपाल में धूप में खड़े करके लोगों की मुश्कें कसकर वह उनको पिटवाता है। दीन-हीन नारियों के साथ तो वह और भी पाशविक व्यवहार करता है। किसीकी चूड़ियाँ तोड़ डालता है, तो किसीका जूड़ा नोंच लेता है। पर इन अत्याचारों को रोकनेवाला वहाँ कोई नहीं था। एक बलराज था जो सरकार की कैद में सड़ रहा था।

"प्रेमाश्रम" में प्रेमचन्दजी ने सरकारी मशीनरी द्वारा किसानों और गरीबों के शोषण को भी रेखांकित किया है। मैजिस्ट्रेट ज्वालासिंह, दारोगा गौसखाँ, दारोगा फैजुल्लाखाँ आदि इसके उदाहरण हैं। ज्वालासिंह बलराज की शिकायत पर पहले तो बेगारी बन्द करवाता है, परन्तु गौसखाँ के उकसाने पर वह भी दूसरे हुक्कामों-सा व्यवहार करता है। गौसखाँ ज्वालासिंह को भड़काता है कि आप हिन्दुस्तानी हैं, इसलिए गाँववाले बेगार देने से बिदक रहे हैं, अंग्रेज हुक्काम आते हैं तो कोई चूँ भी नहीं करता। अभी दो हफ्ते पहले पादरी साहब तशरीफ लाये थे, और हफ्ते भर रहे, लेकिन सारा गाँव हाथ बाँधे खड़ा रहता था।[26]

गौसखाँ की यह बात अपना निशाना नहीं चूकती है। ज्वालासिंह भी अकड़कर बोलते हैं — "अच्छा यह बात है, तो मैं भी दिखा देता हूँ कि मैं किसी अंग्रेज से कम नहीं हूँ।"[27] उसके बाद तो गरीबों पर जुल्म ढाने में ज्वालासिंह सवाये अंग्रेज साबित होते हैं। गौसखाँ और फैजुल्लाखाँ का व्यवहार

तो गांववालों के प्रति क्रूर और निर्दयतापूर्ण है ही । हमारे देश में प्रारंभ से ही यह देखा गया है कि पुलिस कर्मचारी हमेशा जमींदारों और धनी-संपन्न लोगों के साथ रहे हैं ।

इस उपन्यास में किसानों और जमींदारों के संघर्ष के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को भी उकेरा गया है । वह स्वाधीनता आंदोलन का समय था । गांधीजी का प्रभाव समूचे देश में बढ़ रहा था । देश में गांधीवादी विचारधारा के लोग अपने-अपने ढंग से कार्य कर रहे थे । मुंशीजी की वस्तुवादी चेतना ने जहां एक तरफ गांधीवादी विचारों को ग्रहण किया है, वहां दूसरी तरफ मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव भी उन पर परिलक्षित होता है ।

प्रेमशंकर और ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर गांधीवादी विचारों के वाहक हैं । प्रेमशंकर के सन्दर्भ में डा. मन्मथनाथ गुप्त बिल्कुल सही आकलन करते हैं कि " प्रेमशंकर पक्का पैटी बुर्जुआ परोपकारी ढंग का बुद्धिवादी जीव है । उसकी हालत अजीब है । उसके सामने कोई कार्यक्रम नहीं है, समाज के [illegible] रूप की उसे अनुभूति है, किन्तु उसका स्वरूप क्या है, उसका निदान क्या है, इसे वह नहीं समझता । नतीजा यह है कि वह एक सदिच्छाओं का गट्ठर होते हुए भी अप्राहिज और अकर्मण्य है ।[28] गायत्रीदेवी मायाशंकर के नाम अपनी जमींदारी कर देती है, परन्तु माया-शंकर उस सबको त्याग कर देता है ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "प्रेमाश्रम" एक बहुआयामी उपन्यास है । उसमें लेखक ने जमींदारों और किसानों के संघर्ष को रेखांकित करते हुए जमींदारों द्वारा उनका जो शोषण और उत्पीड़न

होता है, उसे यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। अब कहने को तो जमींदारी प्रथा समाप्त हो गई है, परन्तु वही पुराने जमींदार अब राजनेता और उद्योगपति हो गए हैं। उनकी धन-संपत्ति अनेक गुना बढ़ गई है, साथ ही उनकी राजनीतिक ताकत भी अनेक गुना बढ़ गई है। इस प्रकार यदि इस पहलू से विचार किया जाए तो "प्रेमाश्रम" की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। सरकारी तंत्र का जुल्म आजादी के इतने वर्षों बाद भी ज्यों का त्यों बरकरार है। आज भी ~~[illegible]~~ गौसखाँ जैसे पुलिस के अधिकारियों का आतंक गांव के लोगों पर है। पहले देश का शोषण अंग्रेजों द्वारा ~~[illegible]~~ हो रहा था; अब उसका शोषण यहाँ के राजनीतिक और प्रशासनिक तबके के लोग कर रहे हैं। यहाँ स्मृति में एक दोहा कौंध रहा है —

> " लड़ते लड़ते मर गया, सैंतालीस में देश।
> गीदड़ गिध बचा रहे, बदल कबिरा भेष॥ " 28

इस प्रकार प्रासंगिकता की दृष्टि से विचार करें तो प्रस्तुत उपन्यास आज भी अप्रासंगिक नहीं हुआ है। "प्रेमाश्रम" के सन्दर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय लिखते हैं — " Premashram' is the story of clashes between two classes, The Zamindars supported by their selfish sycophants and hertless Goverment officials; and the poor Farmers who are just emerging to build courage to protest against the tyranny and exploitation. " 29

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में निरूपित

संघर्ष ग्रामीण परिवेश में गरीब किसान , कमकीमीवर्ग और जमींदार वर्ग के बीच का है , जो आज भी उतना ही प्रस्तुत है । हिन्दी के आलोचकों ने "प्रेमाश्रम" को भारत का प्रथम राजनीतिक उपन्यास बताया है ।[30] किन्तु इस कथन में अनुचित है , क्योंकि "प्रेमाश्रम" के पूर्व बंगला में बंकिमचन्द्र का "आनंदमठ" प्रकाशित हो चुका था । "आनंदमठ" और "प्रेमाश्रम" की तुलना करें तो एक बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है , और उससे दोनों लेखकों की दृष्टि की विभिन्नता भी परिलक्षित होती है । आनंदमठ में जो संघर्ष है वह विदेशी शासन के खिलाफ है , जबकि "प्रेमाश्रम" में निरूपित संघर्ष विदेशी शासन के साथ-साथ उसीके समांतर धरातल पर किसानों और जमींदारों के बीच के संघर्ष को भी समाकलित किया गया है । यह असंदिग्धतया प्रेमचन्द की व्यापक वस्तुनिष्ठ दृष्टि का परिचायक है ।

इस प्रकार "प्रेमाश्रम" का कथानक राजनीतिक दृष्टि से अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य को लेकर चला है । भारत में विदेशी शासन के प्रारंभ के साथ ही ये दोनों प्रकार के संघर्ष चलते रहे हैं —

" विदेशी पूंजीशाही के विरुद्ध संघर्ष और उसके साथ ही साथ यहाँ के जमींदारों और पूंजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष । इन दोनों उपन्यासों को समतुलित करने पर एक और तथ्य जो सामने आता है , वह यह है कि "आनंदमठ" में अंग्रेजों का निरूपण शत्रु के रूप में हुआ ही है , भारत के मुसलमानों को भी शत्रु के रूप में चित्रित किया गया है । बंकिम के सामने हिन्दू-मुस्लिम एकता का कोई प्रश्न ही नहीं था , परअसल इसके प्रेमचन्द ने अपने विराट साहित्य में एकाध अपवाद को छोड़कर प्रायः सभी रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया है । बंकिम के

सन्दर्भ में धम्मकुमारस्वामी नामक बंगला लेखक का कहना है कि बंकिम के साहित्य में हिन्दू-मुसलमान दोनों के चित्र अलग-अलग तरीके से खींचे गए हैं, जिसमें लेखक की पूर्वाग्रह-प्रेरित दृष्टि कार्य करती है। हिन्दू चरित्र तो स्वर्गीय चरित्र से उद्भासित होते हैं और सुमेरु के ऊँचे शिखर पर शोभायमान होते हैं; किन्तु मुसलमानों का चित्र नीचे उतरकर रौरव, पंकिल, पातालपुरी में पहुँच जाते हैं।" [31]

इस संदर्भ में प्रेमचन्द की दृष्टि अधिक संतुलित और वस्तुनिष्ठ है। उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास में वर्ग-संघर्ष को प्रस्तुत किया है। इस वर्ग-संघर्ष में एक तरफ बलराज, मनोहर और कादिरखाँ जैसे लोग हैं, तो दूसरी तरफ ज्ञानशंकर और गौसखाँ जैसे लोग हैं। लेखक एक स्थान पर यह भी बताते हैं कि सैयद इजादहुसैन किस प्रकार हिन्दू-मुसलमान एकता के नारे का दुरुपयोग करते हुए अपना उल्लू सीधा करते हैं। अतः वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में भी प्रस्तुत उपन्यास एक राह दिखाता है।

"प्रेमाश्रम" पर अपनी टिप्पणी देते हुए डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं — "यदि प्रेमाश्रम संवत 1978 में न लिखा जाकर बारह वर्ष बाद लिखा गया होता, तो भी शायद वह इसी वाक्य 'सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ।' में समाप्त हो जाता, परन्तु प्रेमचन्द को उसे सुखान्त बनाना था, उनका आदर्शवाद संघर्ष के इस कटु परिणाम के लिए तैयार न था। दूसरे शब्दों में उस समय की जनता बिना इस आदर्शवाद के मुलम्मे के इस नग्न यथार्थ को देखने के लिए तैयार न थी। प्रेमचन्द ने अपने युग की माँगों के अनुसार उसे सुखान्त बना दिया है।" [32]

किन्तु प्रेमचन्द यदि जनता की माँग के हिसाब से चलते हैं, तब तो वे एक सामान्य किस्म के लेखक सिद्ध होते हैं।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA
सत्यंशिवंसुन्दरम्
The M. S. University of Baroda

परन्तु ऐसा नहीं है । वस्तुतः प्रेमचन्द एक वस्तुवादी लेखक हैं और ऐसा लेखक अपने युग का आलेखन करता है । इस सन्दर्भ में डा. मन्मथनाथ गुप्त के विचार चिन्तनीय हैं — " जिस समय प्रेमाश्रम हिन्दी संसार में आया है, उस समय का वातावरण मायाशंकर की कल्पना से ओत-प्रोत था । ... यदि प्रेमचन्द मायाशंकर तथा इस प्रकार के अन्य चरित्रों की सृष्टि अपने साहित्य में न करते, तो वे अपने युग के प्रति सच्चे न रह पाते । उस हालत में संभव है कि उनका समाजवाद वर्ग-संघर्ष पर अधिक निखरा हुआ होता, सिद्धान्त दृष्टि से कोई उसमें नुक्स न निकाल पाता, किन्तु वे अपने युग के प्रतिनिधि कलाकार नहीं हो पाते । " 33

वस्तुतः गांधीवाद का युग था । और मायाशंकर गांधीवाद की वास्तविकता है । होते हैं ऐसे लोग, बहुत कम होते हैं, पर होते हैं, मरुद्वीप के समान । हम मरुद्वीप की वास्तविकता को नकार नहीं सकते । यह वर्ग-संघर्ष का महाकाव्य है । आगामी वर्षों में वर्ग-संघर्ष तीव्र होगा । भारत का पूर्वांचल इसके संकेत दे रहा है । पहले तो जमींदारों के साथ उनके पिछलग्गू और कारिन्दे ही होते थे, अब तो वे लोग बाकायदा सेनाएं रखने लगे हैं । सामूहिक नरसंहार हो रहे हैं । ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द के इस उपन्यास की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है ।

रंगभूमि :

प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन सन् 1924-25 के आसपास हुआ । यह भी प्रेमचन्दजी का एक बहुवस्तुलक्षी उपन्यास है । महात्मा गांधी तथा उनके राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में यह उपन्यास लिखा गया है । एक तरफ गांधीजी द्वारा प्रबोधित असहयोग तथा सत्याग्रह की लड़ाई चल रही थी, उसके केन्द्र में अहिंसा का हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त कार्य कर रहा था । दूसरी

तरफ क्रान्तिकारी अपने ढंग से यह संग्राम खेल रहे थे जो हिंसक था । तीसरी तरफ यह 1920 और 1930 के बीच भारतीय जनता की लड़ाई है । प्रेमचन्द की पैनी निगाह देख रही थी कि हिन्दुस्तान की जनता लड़ रही थी बिना किसी पार्टी या राजनीतिक नेता की सलाह के । जनता की इस लड़ाई का नायक है — सूरदास । वह मृत्यु-शैया से पुकार-पुकार कर कह रहा है — " फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो । "[34] यह भारत की अजेय जनता का स्वर था ।[35]

इस उपन्यास का एक प्रमुख चरित्र है — सूरदास । कथा उसके आसपास बुनी गई है । ई.एम. फारस्टर ऐसे चरित्र को — Flat character (द्विपरिमाणी पात्र) कहते हैं । इस प्रकार के पात्र का सृजन एक ही विचार, भावना, गुण या अवगुण के आधार पर होता है । "गोदान" का होरी, "आधा गांव का कुन्नमियां", "राग दरबारी" के वैद्यजी आदि इस प्रकार के पात्र हैं । ऐसे पात्र पाठक के दिलो-दिमाग का कब्जा ले लेते हैं और बरसों उनकी स्मृति में छाए रहते हैं ।[36]

उपन्यास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है — बनारस में पांडेपुर नामक एक बस्ती है । सूरदास इसी बस्ती का एक अंधा भिखारी है । उसने मिठ्ठू नामक एक बच्चे को पाल रखा है । यह मिठ्ठू उसका भतीजा है । उसके मां-बाप प्लेग में मारे गये थे । सूरदास इस बच्चे को जी-जान से चाहता है । सूरदास जमीन के एक टुकड़े का मालिक है । उसने उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए छोड़ रखा है ।

जानसेवक नामक उद्योगपति उस टुकड़े पर सिगरेट का कारखाना खड़ा करना चाहता है । उसके लिए पहले वह सूरदास को समझाता है, परन्तु सूरदास के न मानने पर वह उसे

जबरदस्ती छिन लेना चाहता है। जानसेवक पक्का बनिया है। वह हर बात व्यापार के लिहाज से ही सोचता है। मानवीय संबंधों को भी वह इसी तराजू पर तौलता है। उसका बेटा प्रभुसेवक कवि-प्रकृति का व्यक्ति है। मिसेज सेवक धर्मपुस्त-रूढ़ि-युक्त साम्प्रदायिक किस्म की औरत है। लड़की सोफिया सुंदर, सुशील और उदात्त गुणों से संपन्न है। वह कुंवर भरतसिंह के सुपुत्र कुंवर विनयसिंह को प्रेम करती है। विनय भी सोफिया के प्रेम में पागल है।

भरतसिंह एक स्टेट के राजा हैं और राजसी ठाठ-बाट से रहना चाहते हैं, परन्तु रानी जाह्नवी के प्रभाव के खातिर इधर देशसेवा में लगे हैं। सोफिया एक अकस्मात में कुंवर विनयसिंह की जान बचाती है। माता से धार्मिक मतभेद के कारण वह घर से बाहर निकल गई है। कुछ समय वह राजा साहब के वहां रहती है। जानसेवक इस स्थिति का भी फायदा उठाता है और सोचता है कि राजा साहब उसकी सिगरेट कंपनी के कुछ शेयर खरीद लें। राजा साहब के दामाद महेन्द्रकुमारसिंह चतारी के राजा हैं और बनारस म्युनिसिपालिटी के सर्वेसर्वा हैं, अतः जानसेवक सोचता है कि वे उसे सूरदास की जमीन कानूनी दावपेंच से दिलवा सकते हैं।

रानी जाह्नवी को जब ज्ञात होता है कि सोफिया कुंवर विनयसिंह को चाहती है, तो वह इन संबंधों से खुश नहीं होती और कुंवर विनयसिंह को वह जसवंतनगर भेज देती हैं। रानी जाह्नवी का एक ही स्वप्न है। वह अपने पुत्र को एक सच्चे देशभक्त के रूप में देखना चाहती हैं। अतः विनय-सोफिया को दूर रखने के लिए वह झूठ और प्रपंच का भी सहारा लेती हैं, किन्तु इन दोनों के सच्चे प्रेम के आगे उन्हें झुकना पड़ता है और वह सोफिया

को अपनी वधू के रूप में अंगीकृत कर लेती हैं, पर तभी विनयसिंह लोगों के तानों से विचलित होकर ताव में आकर स्वयं को गोली मार लेते हैं। रानी जाह्नवी को यह मौत शहीदाना लगती है।

जानसेवक न केवल सूरदास की जमीन हड़प कर लेता है, बल्कि अपने राजनीतिक सरोकारों और छल-छद्मों से पांडेपुर गाँव का भी हड़प लेता है। गाँव के लोग बिखर जाते हैं। सूरदास आखिर तक लड़ते हुए दम तोड़ देता है। लोग उसके सम्मान में एक स्मारक बनाते हैं। राजा महेन्द्रकुमार को यह अच्छा नहीं लगता। अतः रात्रि के अंधकार में सूरदास की मूर्ति को तोड़ने पहुँच जाते हैं। मूर्ति तो गिरती है, पर महेन्द्रकुमार उसमें दब कर मर जाते हैं।

उपन्यास की इस मुख्य कथा के साथ-साथ दूसरे अनेक-अनेक संसार हैं। सूरदास और पांडेपुर गाँव, उसके लोग, भैरों और सुभागी, बजरंगी, जगधर, नायकराम; वीरपालसिंह और इन्द्रदत्त जैसे क्रान्तिकारी; अंग्रेज सरकार का प्रतिनिधि मिस्टर क्लार्क; जानसेवक के दफ्तर का एजेण्ट ताहिरअली, उसकी विमाताएँ रकिया और जैनब और उनकी स्वार्थान्धता; ताहिर-अली के सौतेले भाई माहिरअली, जाहिरअली और जाबिरअली; माहिरअली की पुलिस ट्रेनिंग के खर्चे के लिए हिसाब में ताहिरअली द्वारा कुछ गड़बड़ करना, उस अपराध में जेल जाना, उसकी पत्नी कुलसुम और बच्चों की बुरी दशा; पुलिस में तैनात होते ही माहिरअली अपनी माँ को लेकर अलग हो गया जैसे अनेक पात्र और घटनाएँ उपन्यास को एक व्यापक फलक देते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में डा० चन्द्रकान्त देसाई लिखते हैं — " इसमें प्रेमचन्दजी जहाँ विनयसिंह और सोफिया के प्रेम द्वारा एक प्रगतिशील आयाम प्रस्तुत करते हैं, वहाँ सूर-

दास एवं उनके परिवेश की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी के [illegible] राष्ट्रीय आंदोलन को प्रतीकात्मक ढंग से उभारा है। राजा महेन्द्रसिंह के द्वारा प्रेमचंदजी ने उस वर्ग का पर्दाफाश किया है जो एक तरफ तो लोगों की सेवा का दम भरते हैं, पर दूसरी तरफ अंग्रेज अधिकारियों की चापलूसी द्वारा अपनी सत्ता एवं शान को सुरक्षित रखने की चिन्ता में रात-दिन व्यस्त रहते हैं। ताहिरअली के रूप में प्रेमचन्दजी का ही आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष रूपायित हुआ है। कुछ लोगों ने "रंगभूमि" के सूरदास को महात्मा गांधी का प्रतिरूप माना है, परन्तु वस्तुतः वह नव जागृत भारतीय जनता के प्रतीक रूप में अधिक उभरकर आता है। परन्तु उसके गठन में गांधीजी के व्यक्तित्व का प्रभाव अवश्य लक्षित किया जा सकता है।"[57]

"रंगभूमि" में लेखक ने औद्योगीकरण की समस्या को भी उठाया है। इस संदर्भ में प्रेमचन्दजी के विचार गांधीजी के विचारों से कुछ मिलते हैं। गांधीजी चाहते थे कि लघु-उद्योग और कुटिर-उद्योगों का विकास हो। गृह-उद्योग हो। जन-जन के पास काम हो। कोई हाथ बिना काम के न रहे। गांधीजी ग्रामोद्धार में ही देश का उद्धार देखते थे। बड़े उद्योगों से नगरीकरण होगा। उसका असर सामाजिक मान-मर्यादा तथा संयुक्त-परिवारों पर पड़ेगा। गांधीजी की तरह प्रेमचन्दजी भी नहीं चाहते थे कि देश का किसान मजदूर हो जाय। अतः "रंगभूमि" का सूरदास सिगरेट के कारखाने का जी-जान से विरोध करता है। वह जीवन की खेल-भूमि का सच्चा खिलाड़ी है।" यह संसार उसके लिए रंगभूमि है। रंगभूमि में — खेल में, हार-जीत तो लगी रहती है, हारने में विषाद क्या और जीतने में उल्लास क्या? खेलना अपना धर्म है, सच्चाई और ईमानदारी से खेलने वाला अपना कार्य करता चलता है। हार-जीत की चिन्ता करना उसका कार्य नहीं। अधर्म से खेलकर जीता भी

गये तो क्या होगा और धर्म से खेलकर हार भी गये तो क्या ? खेलने-वालों की परंपरा तो बनी रहेगी । कभी-न-कभी तो जीतेंगे ही ।" 38 सूरदास के इन शब्दों में हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के सुर बोल रहे हैं, जिनके नायक महात्मा गांधी हैं ।

"रंगभूमि" के विस्तृत कैनवास पर दृष्टिपात करेंगे तो ज्ञापित होगा कि इस चि×× कथा के मुख्यतया आठ कोण हैं — सूरदास और उसके परिवेश की कथा , विनय-सोफिया की प्रणय-कथा , कुंवर भरतसिंह और रानी जाह्नवी की कथा , चतारी के राजा महेन्द्रसिंह की कथा , जानसेवक की कथा , ताहिरअली की कथा , वीरपालसिंह की कथा तथा अंग्रेज अधिकारी क्लर्क और सरकारी मशीनरी की कथा ।

प्रेमचन्दजी का यह सबसे बड़ा उपन्यास है । इसमें एक साथ अनेक पात्रों और घटनाओं के द्वारा पूंजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव, औद्योगीकरण , नगरीकरण , उसके लाभालाभ , अंग्रेजों की साम्राज्य-वादी नीति , भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन , क्रान्तिकारियों के आंदोलन , उसमें ग्रामीण सामान्य लोगों का सहयोग , देशी सत्ता-धारियों की दोगली नीति , राजा-महाराजाओं की कायरतापूर्ण भूमिका , गांवों का टूटना , मूल्यों का है टूटना , मजदूर और किसानों का निरंतर पिसते जाना , लग्न-संस्था में जाति और धर्म के आयाम का अतिक्रमण जैसे अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं । हिन्दी के कुछ आलोचकों को इसमें कथा का पृथुल विस्तार , पात्रों का आधिक्य तथा कथा-गठन का शैथिल्य दिखाई देता है ; किन्तु यह "रंगभूमि" के व्यबन्ध को न समझने के कारण है । वस्तुतः "रंगभूमि" , "प्रेमाश्रम " , "गोदान " आदि महाकाव्यात्मक×× महाकाव्यात्मक चेतना वाले उपन्यास हैं । ऐसे उपन्यास अपने युग का समग्र चित्र प्रस्तुत करते हैं , अतः उनमें अन्य उपन्यासों वाली कथान्विति का अभाव होता है जो स्वाभाविक है । इस संदर्भ में डा. चन्द्रकान्त देसाई के विचार उल्लेखनीय हैं — " प्रेमचन्द

एक जागरूक प्रकृति के Extrovent type के लेखक हैं, अतः उनके कथा-वृत्त कुछ फैले हुए होते हैं, परन्तु दृष्टिकोण के विस्तृत फलक को देखते हुए इस कथा-विस्तार को पृथुल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसका एक भी पात्र, एक भी घटना निरुद्देश्य नहीं है। प्रेमचन्द स्वयं सोद्देश्य कला के समर्थक हैं। जिन्दगी में उन्होंने कोई भी काम बिना उद्देश्य के नहीं किया है। लेखन में भी उनकी यही प्रतिबद्धता है। यहाँ तक कि सोफिया-विनय की प्रणय कहानी, जो मूल कथा-प्रवाह से कुछ हटी हुई-सी प्रतीत होती है, वह भी निरुद्देश्य नहीं है क्योंकि उसमें जहाँ एक तरफ लेखक का प्रगतिवादी दृष्टिकोण झलकता है, वहाँ दूसरी तरफ सामंतवादी मानस का Romanticism भी झलकता है। इसमें पाण्डेपुर है। उसके सीधे-सादे — कभी टेढ़े भी, अशिक्षित-असंगठित लड़ते-झगड़ते-रोते-चिल्लाते और साथ ही हास-परिहास करते बजरंगी, भैरों, सुभागी, नायकराम, सूरदास जैसे लोग हैं। जसवंतनगर है, जहाँ के लोगों को दोहरा जुल्म सहन करना पड़ता है — अंग्रेज सरकार और उसकी कठपुतली राज्य-सत्ता का। वीरपालसिंह और इन्द्रजीतसिंह जैसे क्रान्तिवीर हैं। बनारस म्युनिसिपालिटी और उनके चेयरमैन राजा महेन्द्रप्रतापसिंह की दोगली करतूतें हैं। जानसेवक का सिगरेट का कारखाना और उससे पोषित-शोषित भ्रष्टाचार का व्याप है। किसानों और मजदूरों के जीवन की विभीषिकाएं हैं। साहिरअली का धुंधला-धुंधला संसार है। संक्षेप में "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" न्याय से जो "रंगभूमि" में है, वह समूचे हिन्दुस्तान में है। वस्तुतः इस पृथुल कथा-विस्तार की बात नाना प्रकार के उपन्यासों के तेवर व मिजाज न समझने के कारण उठी है। "रंगभूमि" एक बृहदकाय उपन्यास है जो कुछ हद तक महाकाव्यात्मकता लिए हुए है। अपने युग की तासीर देना उसका प्रथम युगधर्म है।

लघु-उपन्यास की एकान्विकता, एकान्विति, संक्षिप्तता, एकाग्रता प्रभृति का यहाँ अभाव मिलेगा ; परन्तु उपन्यास के प्रस्तुत प्रबंध को देखते हुए यह अभाव औपन्यासिक कला में बाधक नहीं बल्कि साधक ही हुआ है।"[39]

"रंगभूमि" की औपन्यासिक कला तथा श्रेष्ठता के संबंध में हिन्दी के विद्वानों में काफी मतभेद है। श्री. अनसूयाप्रसाद पाठक, डा. गंगाप्रसाद पाण्डेय, श्री. हरिभाऊ उपाध्याय आदि विद्वान जहाँ इसे एक श्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं, डा. पांडेय तो इसे "गोदान" से भी श्रेष्ठ मानते हैं, वहाँ डा. मन्मथनाथ गुप्त इसे एक कमजोर उपन्यास मानते हैं।[40]

उपर्युक्त प्रथम तीन विद्वान इसे गांधीवादी परिणति के कारण श्रेष्ठ मानते हैं, वहाँ डा. गुप्त इसी कारण से इसे एक कमजोर उपन्यास मानते हैं। सूरदास को गांधीजी की ही तरह वे एक असफल व्यक्ति करार देते हैं। सूरदास की जमीन जानसेवक हड़प लेता है, पांडेपुर बिखर जाता है, क्लार्क की गोली से सूरे की मौत हो जाती है, यहाँ तक कि उसका पालक-पुत्र मिठ्ठू भी सूरदास को धिक्कारने लगता है। सूरदास की त्याग-भावना भी पांडेपुरवालों की स्वार्थ-भावना के सामने हार जाती है।

परन्तु यहाँ एक बात की ओर ध्यान देना पड़ेगा कि सूरे की इस हार में भी जीत है। उसका जयघोष यही रहता है। वह कहता है कि फिर खेलेंगे, ज़रा दम ले लेने दो। इससे बनारस का राजा महेन्द्रप्रतापसिंह सूरे की मूर्ति को तोड़ने के लिए रात के अन्धेरे में जाता है, वह किस बात का संकेत है। पहले ये लोग अपनी मनमानी करते थे और कोई चूं तक नहीं कहता था। यहाँ एक सामान्य सूरे जैसे एक भिखारी की लोकप्रियता से जलता है।

यहाँ डा. गुप्त द्वारा ही उद्धृत लेनिन के विचारों को इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है —

" बड़ी पराजय से ही क्रांतिकारी दलों को तथा क्रान्तिकारी वर्ग को वास्तविक और हितकर सबक, चीजों को बुद्धियुक्त रूप से समझने में मदद, ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद के सबक तथा राजनैतिक संग्राम को चलाने में योग्यता तथा दक्षता प्राप्त होती है। दुर्दिन में ही इ मित्रों की पहचान होती है। हारी हुई सेनाएं अपने सबक अच्छी तरह सीखती हैं। " 41

डा. गुप्त कहते हैं कि पराजय के बाद लड़ने वाले लोग उखड़ बैठ जायें, या बिखर जायें, तो अवश्य ही वह पराजय किसी प्रकार अच्छी नहीं कही जा सकती। 42

किन्तु यहाँ सूरदास चकता कहाँ है ? वह तो कहता है कि दम ले लेने दो, फिर खेलेंगे। हार-हार कर तुमसे खेलना सीखेंगे। एक सूरदास जैसा भिखारी राजा बलारी, कुँवर विनयसिंह, जान सेवक, उप्रिय प्रतिनिधि क्लार्क आदि सभी के लिए एक चैलेन्ज बन जाता है। यही उसकी सबसे बड़ी जीत है। यद्यपि अन्त में वह मर जाता है, तथापि मरते-मरते भी लोगों को वह एक नैतिक बल, नैतिक ताकत दे जाता है। तभी तो क्लार्क एक स्थान पर राजा बलारी को कहता है — " हमें आप जैसे मनुष्यों से भय नहीं है, भय ऐसे मनुष्यों से है जो जनता के हृदय पर शासन करते हैं। " 43 यहाँ क्लार्क का इशारा सूरदास की ओर है।

सूरदास प्रेमचन्द के उन आदर्श पात्रों में हैं जो जिन्दगी को एक संघर्ष और साथ ही एक खेल भी समझते हैं। सूरदास के चरित्र की यह दृढ़ता के बीज हमें उपन्यास के प्रारंभ में ही एक स्थान पर मिल जाते हैं, जहाँ मिठुआ अपना झोंपड़ा जल जाने के सन्दर्भ में सूरदास से बात करता है। सूरदास वहाँ उसे

बताता है कि यदि कोई एक हजार बार उसके झोंपड़े में आग लगा-देगा, तो वह एक हजार बार फिर-फिर उसे बनायेगा।

सूरदास एक सहृदय और परोपकारी जीव है। भीख माँगकर जीवन-निर्वाह चलाता है। एक-एक पैसे के लिए अमीरों की गाड़ियों के पीछे भागता है। चाहता तो अपनी जमीन जान-सेवक को बेचकर मजे की जिन्दगी जी सकता था। परन्तु वह अपना स्वार्थ नहीं देखता, परमार्थ देखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास प्रेमचन्द की ही मानस-संतान है। प्रेमचन्द चाहते तो खूब रुपये कमा सकते थे, किन्तु उनके सम्मुख देश साहित्य और समाज का हित मुख्य था। सूरदास की चिन्ता यह है कि कि सिगरेट का कारखाना खुलने से बाहर के मजदूर बस्ती में आयेंगे; जुआ, शराब, ताड़ी का प्रचलन बढ़ेगा; मान-मर्यादा और आँख की शरम का लोप होगा; वेश्यायें आयेंगी और बस्ती का वातावरण दूषित होगा। प्रेमचन्द की सूक्ष्म दृष्टि ने यह सब बहुत पहले ही देख लिया था। प्रेमचन्द ने उस समय जो भविष्यवाणी की थी, अब वह हकीकत में बदल रही है और इसलिए उपन्यास की प्रासंगिकता आज और भी बढ़ गई है।

सूरदास भिखारी है। एक-एक पैसे के लिए मारा-मारा फिरता है। ऊपर से एक अनाथ बच्चे को पाल रहा है। उसकी सारी जमा-पूंजी भैरों उड़ा जाता है, सुभागी वापस देने आती है, तो साफ मना कर देता है, बाद में उसी भैरों को लोगों ने उसके लिए जो चंदा करके पैसे इकट्ठा किये थे वह भी दे देता है। जो लोग उसके साथ बुरा सलूक करते हैं उसके साथ भी भलाई करता है। कुछ लोगों का मानना है कि ऐसे लोग कहाँ होते हैं? तर्क की दुनिया में नहीं होते, किताब की दुनिया में भी नहीं

नहीं होते , बुद्धि और तर्क वालों को ये समझ में नहीं आते । पर दुनिया केवल तर्क और बुद्धि पर नहीं चलती । बुद्धि की वास्तविकता और संसार की वास्तविकता में बड़ा अंतर होता है । इसीलिए कहते हैं — " Man is not only the mind, but soul also." । ऐसे पात्र सब युग में , सब समय में , प्रासंगिक होते हैं । ये कम होते हैं , पर होते हैं । गांधी सब नहीं होते , प्रेमचन्द सब नहीं होते । अतएव इस पात्र की सृष्टि की दृष्टि से भी यह उपन्यास आज भी प्रासंगिक है ।

एक अन्य दृष्टि से भी यह उपन्यास प्रासंगिक है । इसमें औद्योगीकरण , पूंजीवाद और नगरीकरण का विरोध है । ये तीनों चीजें विकास के नाम पर हो रही है । परन्तु विकास होता किसका है । अब तो उदारीकरण , भूमंडलीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का समय आ गया है । यदि इन चीजों से विकास हो रहा है , तो पिछले पचास वर्षों में हमारे देश का विकास होना चाहिए , देश समृद्ध होना चाहिए , पर हम तो कर्जदार हो गए हैं , इतने कर्जदार कि अब तो कर्ज का सूद चुकाने के लिए भी कर्ज लेना पड़ रहा है । निजीकरण के साथ बेरोजगारी बढ़ रही है । विकास होगा , पर कुछ लोगों का , बाकी लोगों के लिए वह नरक होगा । भारत सरकार ने "एनरोन" को मान्यता दी । पर उसके कारण अब ~~महाराष्ट्र~~ महाराष्ट्र सरकार भिखारी हो जायेगी । यदि "एनरान" से बिजली न लें तो भी सरकार को प्रतिवर्ष 3000 करोड़ रुपये की राशि आनेवाले 40 वर्षों तक उसे देनी होगी और बिजली वह ले नहीं सकती , क्योंकि वह हमारे ही देश में , हमारे संसाधनों से उत्पन्न बिजली से सात गुना महंगी होती है । यह सौदा वाजपायी सरकार ने अपने तेरह दिनों के शासन-काल में किया था । अब बताइये ऐसे व्यापार , विकास और भूमंडलीकरण की क्या आवश्यकता है ? हम जानेवालों को

[illegible] फिर से बुला रहे हैं । एक "ईस्ट इण्डिया" कंपनी को निकालने में नाकों दम आ गया था और हम पचास वर्षों में ही पिछले इतिहास को [illegible] भूलकर सैकड़ों विदेशी कंपनियों को बुला रहे हैं । याद रहे जो देश और समाज पिछले इतिहास को भूला देता है, उसका कोई इतिहास नहीं होता । अतः ऐसे खतरनाक समय और खतरनाक मोड़ पर यह उपन्यास "समुद्री-दीप" का काम कर सकता है । प्रेमचन्द ने देश से भी पूर्व, स्वतंत्रता से भी पूर्व, हमारे देश का शासन कैसे लोगों के पास जानेवाला है, यह संकेतित कर दिया था, बीसवीं सदी के चौथे दशक में ।

कायाकल्प :
=========

"कायाकल्प" सन् 1926 का उपन्यास है । यह उपन्यास समूचे प्रेमचन्द-साहित्य में कुछ अलग प्रकार का और इसलिए विवादास्पद है । कहानी दो स्तरों पर चलती है । एक कहानी चक्रधर की है । दूसरी रानी देवप्रिया की कहानी है । यह कहानी काल्पनिक है और प्रेमचन्द को सीधे तिलस्मी उपन्यासों से जोड़ती है । रानी देवप्रिया और उसके पूर्व-जन्मों का वृतान्त कुछ परी-कहानियों-सा प्रतीत होता है । प्रेमचन्दजी इस प्रकार के उपन्यासों के विरोधी थे और इसलिए तो "सेवासदन" जैसे वस्तुनिष्ठ उपन्यास के द्वारा उन्होंने एक नयी तरह को स्थापित किया । स्वयं ऐसे तिलस्मी प्रकार के उपन्यासों को नकारकर, फिर उसकी ऐसी झलक दिखाना, प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार के लिए अनेक प्रश्न पैदा करती है । जिस प्रवृत्ति को वे पूरी तरह, बुरी तरह फटकार चुके थे, उसका ऐसा भौंडा प्रदर्शन ? बात कुछ समझमें नहीं आती है ।

रानी देवप्रिया की कहानी कुछ इस प्रकार की है : रानी देवप्रिया जगदीशपुर की रानी है । वह विधवा है, पर खूब भोग-विलास में जीवन व्यतीत करती है । उसके जीवन में जो भी युवा और सुन्दर पुरुष आते हैं, वे सब उसके पूर्व-जन्म के पति होते हैं या प्रेमी होते हैं । एक बार एक सुंदर सजीला राजकुमार उसके पास पहुंचता है । वह बताता है कि पूर्वजन्म में वह रानी का पति था । उसे लेकर रानी कहीं चली जाती है और राज्य विशालसिंह को सौंप जाती है । राजा विशालसिंह का राज्य-तिलक होता है । यहाँ से चक्रधर की कथा जुड़ती है ।

बीच में एक दूसरा ही रचना-संसार है — चक्रधर और भारत की जनता का । पर पहले हम रानी देवप्रिया की कहानी के तानों-बानों को समाप्त कर लें । चक्रधर का विवाह आगरा के यशोदानंदन की पालित-पुत्री अहिल्या से होता है । इसी अहिल्या से उन्हें एक पुत्र प्राप्त होता है, जिसका नाम है— शंखधर । एक बार शंखधर अपने पिता को ढूंढने निकल पड़ता है । किसी अज्ञात शक्ति के आकर्षण से वह रानी देवप्रिया के पास पहुंच जाता है । दोनों खूब प्रेम से मिलते हैं, क्योंकि शंखधर भी रानी के पूर्व-जन्म का पति था । रानी देवप्रिया कमला बनकर शंखधर से विवाह करती है । शंखधर और रानी देवप्रिया का मिलन होता है । किन्तु रानी को शायद शाप मिला हुआ है कि जब भी वासनाग्रस्त होकर वह किसी युवक की ओर लपकती है, उसकी मृत्यु हो जाती है । शंखधर भी यह कहते हुए मर जाता है कि अब हम तब मिलेंगे जब हमारे बीच किसी प्रकार की वासना न होगी । शंखधर की मृत्यु के आघात से राजा विशालसिंह भी आत्महत्या कर लेते हैं । शंखधर की माता अहिल्या भी इस आघात से मर जाती है । जगदीशपुर में पुनः रानी देवप्रिया राज्य करने लगती है । उसने अब वासना

को त्याग दिया है । अब वह शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करती है । अब वह विलासिनी रानी देवप्रिया नहीं , तपस्विनी रानी देवप्रिया है । यही "कायाकल्प" है । रानी देवप्रिया का कायाकल्प हो जाता है । पर पाठक के जिज्ञासु मन में फिर भी यह प्रश्न रहेगा कि फिर कभी कोई सुन्दर-सा , सजीला-सा , शक्तिमान-सा राजकुमार आयेगा , जो रानीजी का पूर्व-प्रेमी या पति होगा । प्रेमचन्द साहित्य में यह कथा एक अवतार-सी जान पड़ती है । प्रेमचन्द जैसे लोकप्रिय कथाकार इसके द्वारा क्या कहना चाहते हैं , क्या स्थापित करना चाहते हैं , यह एक रहस्य है ।

यह समूचा कथाखंड एक परी-कहानी सा प्रतीत होता है । रानी देवप्रिया क्या चिर-युवा रहती है । वह प्रौढ़ा या बूढ़ा नहीं होती ? क्या वह कोई रक्त-शोषा डाकिन है ? या देवी है ? या अप्सरा है ? क्या है ? और फिर उसके समानांतर तत्कालीन समाज और इतिहास का वास्तविक रूप-संसार ।

राजा विशालसिंह का जीवन भी सामंतवादी परिपाटी का है । उनकी तीन रानियाँ हैं । वय ढल गयी है । फिर भी दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह की कन्या मनोरमा पर वे मुग्ध हो जाते हैं , और तहसीलदार मुंशी वज्रधरसिंह के द्वारा विवाह का प्रस्ताव भिजवाते हैं । मनोरमा चक्रधर को प्रेम करती है , अतः उसे छुड़ाने के लिए राजा विशालसिंह से विवाह करती है । मनोरमा के पिता ठाकुर हरिसेवकसिंह भी उसी परिपाटी के हैं । लौंगी उनकी विवाहिता पत्नी नहीं है , रखैल है , पर शील, चारित्र्य और स्वामीभक्ति में किसी सती-साध्वी स्त्री से कम नहीं है ।

इस उपन्यास का दूसरा कथाखंड चक्रधर का है । प्रेमचन्द

के औपन्यासिक विकास-क्रम तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टि के साथ इसका मेल खा जाता है । चक्रधर तहसीलदार मुंशी वज्रधरसिंह के पुत्र हैं । एम.ए. पास है । गांधीवादी-आदर्शवादी युवक है । चक्रधरवाली कहानी के मुख्य मुद्दे इस प्रकार हैं —

चक्रधर की समाजसेवा की इच्छा , पिता के बहुत दबाव डालने पर दीवान साहब की कन्या मनोरमा को पढ़ाने के लिए राजी , मनोरमा का चक्रधर को चाहना , यशोदानंदन के साथ चक्रधर का आगरा जाना , आगरे में गाय की कुर्बानी को लेकर हिन्दू-मुस्लिम दंगा , चक्रधर का जान पर खेलकर दंगे को दबाना , यशोदानंदन की पालितपुत्री अहिल्या का कुछ मुसलमानों द्वारा अपहरण , यशोदानंदन के मित्र ख्वाजा साहब की मेहमानदारी में उनके बेटे द्वारा अहिल्या पर बलात्कार का प्रयास , अहिल्या द्वारा छुरा घोंपकर उसे मार डालना , इस दंगे में यशोदानंदन की मृत्यु , अहिल्या का मुसलमानों के कब्ज़े से छूटकर वापस आना , लोगों द्वारा लांछित होना , यशोदानंदन के अंतिम संस्कार के तीन दिन बाद चक्रधर के साथ उसका विवाह , चक्रधर को अहिल्या से शंखधर नामक पुत्र की प्राप्ति , बाद में इस रहस्य का खुलना कि अहिल्या राजा विशालसिंह की खोयी हुई बेटी है , इस प्रकार चक्रधर का राजा का दामाद होना , अहिल्या का ऐश्वर्य में डूब जाना , चक्रधर भी कुछ कुछ सत्ता का नशा चढ़ना , उसीमें एक गांववाले की हत्या , शंखधर का युवा होना , रानी देवप्रिया से मिलना , रानी देवप्रिया से शंखधर का विवाह और बाद में मृत्यु , पुत्र-शोक में अहिल्या की भी मृत्यु , नाती की मृत्यु के शोक में राजा विशालसिंह की मृत्यु आदि अनेकानेक घटनाएं इसमें वर्णित है ।

चक्रधर का अहिल्या से विवाह होता है , उसके पूर्व जगदीशपुर में बेगार और चंदे के सन्दर्भ में जो आंदोलन होता है

उसके नेता चक्रधर हैं । चक्रधर राजा विशालसिंह को समझाने की भरसक कोशिश करते हैं पर असफल रहते हैं । तैश में आकर राजा साहब बन्दूक का कुन्दा चक्रधर को मारते हैं । चक्रधर गिर पड़ते हैं । इस पर मजदूर जोश में आ जाते हैं और दंगा हो जाता है । लोग मैजिस्ट्रेट पर भी टूट पड़ते हैं । चक्रधर उनको भी बचाने की कोशिश करते हैं, पर वही मैजिस्ट्रेट चक्रधर को लोगों के भड़काने के जुर्म में जेल में ठूंस देता है । चक्रधर को छुड़ाने के लिए ही मनोरमा राजा विशालसिंह से शादी करती है । जेल में ही चक्रधर धन्नासिंह नामक एक देहाती को मिलता है । बाद में इसी देहाती के भाई की हत्या चक्रधर से हो जाती है ।

इस प्रकार दो कहानियां समानान्तर चलती हैं । एक का संबंध राजा-रानियों, दीवानों और जमींदारों से है ; तो दूसरी का संबंध स्वाधीनता-संग्राम और जनता के संघर्ष है । जनता का यह संघर्ष प्रेमचन्द के प्रायः हर उपन्यास में कमोबेश रूप से मिलता है । आज अंग्रेज नहीं है, राजाशाही खत्म हो गई है, कहने को जमींदारी भी खत्म हो गई है ; किन्तु इस लोकतंत्र में भी शासक और शासित के बीच के संबंधों में, तनावों में, संघर्षों में कोई खास बदलाव नहीं आया है यह तथ्य पहले अनेकशः कहा जा चुका है । अतः उपन्यास की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है । जब हम यह कहते हैं तो हमारा तात्पर्य चक्रधर से संबद्ध कहानी से है । प्रेम-चंद साहित्य में रानी देवप्रिया की कहानी की तार्किकता कुछ समझ में नहीं आती है ।

इस संदर्भ में डा. एस.एन. गणेशन कहते हैं : "शायद भारत के हिन्दू समाज में रूढ़ अंध विश्वासों और क्षुद्र परंपराओं को दिखाना ही प्रेमचन्दजी का ध्येय ~~xx~~ रहा हो ।"[45]

डा. मन्मथनाथ गुप्त इस संदर्भ में कहते हैं : "उपन्यास के इहलौकिक अंश में बहुत से अच्छे तथा स्वाभाविक चरित्र हैं । यदि देवप्रियावाला अंश न होता तो हम इस उपन्यास को निस्संदेह रूप से श्रेष्ठ कृतियों में गिनाते , किन्तु उस अंश के बोझ के कारण इसकी कला रोगग्रसित हो गयी है । राइडर हैगार्ड ने अपनी "शी" नामक रचना में तथा बंगला के अति आधुनिक लेखकों में फाल्गुनी मुखोपाध्याय ने "ज्योतिर्मय" नामक उपन्यास में परलोकतत्त्व-मूलक कथानक लिया है , किन्तु कुछ भी हो इस प्रकार के कथानक को अपनाना प्रगतिवाद के विरुद्ध है , इसमें संदेह नहीं ।" [46]

इस संदर्भ में हमारा यह सोचना है कि हो सकता है कि यह पूरा प्रसंग एक व्यंग्य-उपसंहार के रूप में प्रेमचन्द लाना चाहते हों । "प्रेमाश्रम" के ज्ञानशंकर अपनी वासना और हवस की पूर्ति के के लिए कृष्णलीला का स्वांग रचते हैं , वहां रानी देवप्रिया अपनी विलासिता के लिए जन्म-जन्मांतरों का स्वांग रचती है । दूसरे संघर्षपूर्ण जन-जीवन के विलोम (कान्ट्रास्ट) के रूप में प्रेमचन्द यह वासना-पंकिल पक्ष रखना चाहते हों यह भी हो सकता है , क्योंकि पतनोन्मुखी-मरणोन्मुखी जीवन-परंपरा वासना के नंगे खेल में ही अपना रास्ता ढूंढती है ।

इस उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने पक्का-गाना (शास्त्रीय संगीत) और फलित ज्योतिष का भी खूब मज़ाक उड़ाया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने "श्रद्धा-भक्ति" नामक निबंध में इस पक्के-गाने की खूब खिंचाई की है । यहां उपन्यास का एक पात्र कहता है : "गाना ऐसा होना चाहिए कि दिल पर असर पड़े , यही नहीं कि तुम तो तुम ताना ना का तार बांध दो और सुननेवाला तुम्हारा मुंह ताकता रहे । जिस गाने से मन में भक्ति , वैराग्य , प्रेम , आनंद की तरंगें न उठें वह गाना नहीं है ।" [47]

जो लेखक इतना वस्तुनिष्ठ हो , इतना बुद्धिवादी और तार्किक हो , सोद्देश्य कला का माननेवाला हो ; वह एक ऐसे गुमराह उपसंहार की ओर चला जाए यह मानने को जी नहीं करता , अतः जैसा कि ऊपर कहा गया , यह तत्कालीन मूल्य-हीनता का मजाक उड़ाने के लिए किया गया हो , यह अधिक संभव लगता है ।

निर्मला :

"निर्मला" सन् 1926 का उपन्यास है । इसे हम नारी-जीवन की महान त्रासदी के रूप में देख सकते हैं । कथा-संगठन की तथा मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसे हम प्रेमचन्दजी का श्रेष्ठ उपन्यास कह सकते हैं । प्रेमचन्दजी का प्रत्येक उपन्यास नव-जागरण काल द्वारा संबंधित किसी-न-किसी प्रकार की समस्या को उद्घाटित करता है । प्रस्तुत उपन्यास दहेज और दुहाजू की समस्या को और उसके कारण निर्मला के नरक होते जीवन को वस्तुनिष्ठ तरीके से उकेरता है ।

बाबू उदयभानुलाल एक वकील हैं । अपनी बेटी निर्मला का विवाह वे खूब धामधूम से करना चाहते हैं । इस बात को लेकर पति-पत्नी में विवाद भी होता है । उदयभानुलाल गंगा में डूबने का स्वाँग रचकर पत्नी के होश ठिकाने लाने का विचार करते हैं और एकाएक गंगा की ओर चल पड़ते हैं । तीन साल पहले उन्होंने मतई नामक एक बदमाश को तीन साल की सजा दिलवायी थी । मतई सजा काटकर आ गया था । वह वकील साहब से बदला लेना चाहता है । अतः एकांत पाकर उनको मार डालता है । इस घटना से निर्मला के जीवन का नक्शा ही बदल जाता है ।

कल्याणी पर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है । निर्मला के अलावा एक और लड़की है कृष्णा । निर्मला के विवाह की तैयारियों में काफी धन खर्च हो चुका था , अतः कल्याणी विवाह को पीछे ठेलना नहीं चाहती । वह पुरोहित मोटेराम को भालचन्द्र सिन्हा के यहाँ भेजती है । निर्मला का विवाह उनके बड़े बेटे भुवनमोहन से तय हुआ था । भालचन्द्र बड़े हिसाबी किस्म के आदमी थे । दहेज तय नहीं हुआ था , पर उन्हें बिना माँगे बहुत-कुछ मिलने की संभावना दिखती थी । अब वकील साहब की मृत्यु के कारण इस संभावना पर पानी फिरता नजर आ रहा था । बहाना कर देते हैं कि वकील साहब की बेटी सामने रहेगी तो वे अपने परम मित्र की असम-
असमय मृत्यु को भुला नहीं पायेंगे । भालचंद की पत्नी रंगीलीबाई कल्याणी के पत्र को पढ़कर कुछ पसीजती है , तब भालचन्द्र बेटे भुवन से पूछते हैं । बाप सेर है तो बेटा सवा सेर । वह साफ-साफ कह देता है कि ऐसी जगह शादी करवाइये जहाँ से खूब मालपानी मिले ।

अतः अपनी छाती पर पत्थर रखकर कल्याणी निर्मला का विवाह मुंशी तोताराम से कर देती है । मुंशी तोताराम विधुर हैं । पहली पत्नी से तीन लड़के हैं — मंसाराम , जियाराम और सियाराम । मंसाराम सोलह वर्ष का है । जियाराम बारह वर्ष का और सियाराम सात वर्ष का है । मंसाराम निर्मला का लगभग हमउम्र है । निर्मला इन तीनों बच्चों को चाहती है , पर मंसाराम हमउम्र होने के कारण उसे विशेष प्रिय है । मुंशीजी की विधवा बहन रुक्मिणी उनके साथ रहती थी । वह बच्चों को निर्मला के पास फटकने न देती थी , मानो वह कोई स्त्री नहीं पिशाचिनी हो । मुंशीजी बूढ़े थे । अतः अपनी युवा पत्नी का प्रेम पाने के लिए नित्य नये नुस्खे अपनाते थे । पहले ही महीने से निर्मला को अपना खजानची बना देते हैं । रुक्मिणी इस कारण

और भी जल-भुन जाती है । शारीरिक प्रेम की क्षति-पूर्ति के लिए मुंशीजी निर्मला को आभूषणों से लाद देते हैं । यह बात आग में घी का काम करती है और रुक्मिणी हररोज कोई-न-कोई बखेड़ा खड़ा करती है । घर में अशांति पैदा होती है । फलतः निर्मला और भी मंसाराम के करीब रहने लगती है । मंसाराम का साथ पाने के लिए वह उससे अंग्रेजी सीखती है ।

इधर निर्मला का प्यार पाने के लिए मुंशीजी नित्य नये नुस्खे अपनाते हैं । रंगीला, छैला और बहादुर बनने की हास्यास्पद कोशिश करते हैं । यह पूरा ही अंश मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और सूझ-बूझ के काबिल है । मुंशीजी के लाख प्रयत्नों के बावजूद निर्मला कुछ-खींची-खींची सी रहती है । ऐसे में एक दिन वे भाँप लेते हैं कि निर्मला मंसाराम के साथ काफी घुल-मिल गई है । फल, शंका की काली नागिन इनको डँस लेती है । वे निर्मला और मंसाराम के पवित्र संबंधों पर शंका-कुशंका करने लगते हैं । मंसाराम को निर्मला से अलग करने के लिए मुंशीजी उसे बोर्डिंग में डाल देते हैं । मंसाराम बीमार रहने लगता है । इस पर उसे पता मालूम होता है कि उसके पिता उसके और नयी माँ के रिश्तों को लेकर शंकाशील हैं, तब तो उस पर कुठाराघात होता है और इसी मानसिक आघात में वह दम तोड़ देता है ।

इसके बाद घटनाक्रम निरंतर बिगड़ता जाता है । जियाराम का यह सोचना कि मंसाराम को इन लोगों ने मार डाला है, उसका दिन-ब-दिन आवारा होता जाना, बुरी आदतों में फँसना, घर में ही चोरी करना, पकड़े जाने पर आत्महत्या कर लेना, निर्मला का एक कन्या को जन्म देना, मुंशीजी की आमदनी का निरंतर कम होते जाना, निर्मला के स्वभाव में कर्कशता का आना, सियाराम से सौदे मँगवाना, उसमें रात-दिन की खिटपिट, उससे तंग आकर

एक दिन सियाराम का साधुओं के साथ भाग जाना , इन सबके लिए मुंशीजी का निर्मला को ही दोषी ठहरना , अन्ततः उनका सियाराम को ढूंढने निकल पड़ना , कई महीनों तक कोई पता न चलना , निर्मला का बीमार हो जाना , उसी बीमारी में प्राण पखेरू का उड़ जाना , अन्त्येष्टि संस्कार के समय मुंशी तोताराम का अचानक आ जाना जैसी एक-से-एक त्रासद स्थितियों से इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है । निर्मला , एक नन्हीं-सी जान को किन-किन स्थितियों से गुजरना पड़ता है ।

इसके साथ-साथ भुवनमोहन तथा सुधा की कहानी भी जुड़ी हुई है । भुवनमोहन डाक्टर हैं । उनकी पत्नी सुधा निर्मला की सहेली बनती है । सुधा द्वारा जब डाक्टर को पता चलता है कि यही वह निर्मला है जिससे उनकी शादी होनेवाली थी , तब उन्हें बहुत पश्चाताप होता है । फलतः वे अपने प्रयत्नों से से कृष्णा की शादी अपने छोटे भाई से करा देते हैं । निर्मला को इस बात से बहुत प्रसन्नता होती है । किन्तु यह प्रसन्नता भी अधिक टिकती नहीं है ।

एक दिन सुधा कहीं गयी हुई थी । अचानक निर्मला आती है । निर्मला उल्टे पाँव लौटना चाहती है , पर डाक्टर साहब के आग्रह से रुक जाती है । एकांत पाकर डाक्टर साहब निर्मला का हाथ पकड़ लेते हैं । निर्मला वहां से भाग खड़ी होती है । रास्ते में सुधा मिलती है । उसके बहुत आग्रह करने पर निर्मला उसे सबकुछ बता देती है । सुधा पति को आड़ों हाथ लेती है । मारे लज्जा और शर्म के डाक्टर साहब भी आत्महत्या कर लेते हैं । निर्मला अपने को हतभागिनी समझती है और सोचती है कि उसके कदम जहां-जहां पड़ते हैं वहां सिवाय सत्यानाश के कुछ नहीं होता ।

अब प्रस्तुत उपन्यास पर विचार करने से कुछ मुद्दे सामने आते हैं । दहेज और दुहाजू की समस्या तो है ही और "सेवासदन" के सन्दर्भ में विचार करते हुए यह घोषित किया गया है कि यह समस्या हमारे समाज में अब भीषण रूप लेती जा रही है । वस्तुतः यह एक आर्थिक समस्या है ।

निर्मला की माँ कल्याणी तथा डा. भुवनमोहन सिन्हा की माँ रंगीलीबाई दोनों की घर-परिवार में स्थिति लगभग समान है । पति की इच्छा हुई तो किसी मामले में पूछ लिया गया , अन्यथा "ढोड है वही जो पुरुष रचि राखा " वाली स्थिति सर्वत्र उच्च-वर्ण तथा उच्च वर्ण के उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग में पायी जाती है । विवाहोपजीवी नारी हमेशा पराधीन अवस्था में रही है । इसके विपरीत निम्नवर्ग और निम्नवर्ग निम्न मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ण की जातियों में स्त्री की स्थिति कुछ अच्छी है , निर्णायक है , क्योंकि आर्थिक उपार्जन में उसकी बराबर की भागीदारी होती है ।

विवाह में लड़के-लड़की का मनमेल , प्रेम और संस्कार का महत्व होना चाहिए ; लेकिन ऐसा होता नहीं है । हमारे यहाँ के प्रायः विवाह दहेज को केन्द्र में रखकर होते हैं । संक्षेप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि हमारे समाज में विवाह कमोबेश एक इकरारनामा है , मन के मेल के साथ उसका कोई संबंध नहीं । रुपये की थैलियाँ गिनी जाती हैं , और विवाह का निर्णय थैलियों की गिनती से होता है ; ऐसी हालत में थैलियों की वास्तविकता तो सत्य हो जाती है , उसमें कोई धोखा नहीं होता , हर एक रुपया बजाकर लिया जाता है , किन्तु विवाह कैसा हुआ , इसका कुछ पता नहीं चलता । अवश्य मन के मेल मिलाप से जो विवाह होंगे , वे हमेशा विवाहितों के आमरण काल तक के लिए सफल होंगे , ऐसी गारंटी यहाँ नहीं

दी जा रही है । यदि बाद को असफल ज्ञात हुआ तो उसके लिए तलाक हो सकता है, कम से कम होना चाहिए । " 48

इस संदर्भ में भी कह सकते हैं कि तथाकथित उच्चवर्गीय एवं उच्चवर्णीय लोगों की तुलना में पिछड़ा तबका अधिक प्रगतिशील विचार लिए हुए है । यहाँ तलाक भी होते हैं और विधवा-विवाह भी । यह इसलिए संभव है कि पिछड़े तबकों में विवाह के लिए कन्या-पक्ष वालों को दहेज नहीं देना पड़ता, बल्कि कहीं-कहीं तो वर-पक्ष वाले देते हैं । अतः मन-मेल न हुआ, तो तुरन्त ~~दूसरा विवाह~~ तलाक और तुरन्त दूसरा विवाह हो जाता है । सवर्णों में प्रथम विवाह तो जैसे-तैसे होते हैं, यदि माँ-बाप की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, तो फिर दूसरे विवाह की तो बात ही कैसे हो सकती है ।

अतः कहा जा सकता है कि दहेज-व्यवस्था के मूल पितृ-सत्तात्मक समाज में है, और जब तक यह पितृसत्तात्मक समाज रहेगा नारी की स्थिति दयनीय रहेगी । " नारी तुम केवल श्रद्धा हो " कहने के लिए है, वास्तव में उसकी स्थिति तो "आँचल में दूध और आँखों में पानी वाली ही है । सियाराम वाली जो त्रासदी है, उसके मूल में भी यही बात है । कन्या के जन्म के बाद निर्मला उसके दहेज की चिन्ता में लग जाती है और एक-एक पैसा खर्च करने में उसकी नानी मरती है और इसीलिए वह सियाराम से भी रुखाई से पेश आती है । जिन समाजों में गरज लड़की वालों की होगी, वहाँ स्त्रियों की स्थिति ~~हमेशा~~ ~~सदा~~ दोयम दर्जे की रहेगी ।

निर्मला अन्त में रुक्मिणी को जो कहती है, उसमें उसका यही दर्द कराहता हुआ दृष्टिगत होता है । यथा – "अब मुझे किसी वैद्य की दवा ~~फा~~ फायदा न करेगी । आप

मेरी चिन्ता न करें । बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूं । अगर जीती-जागती रहे , तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा । मैं तो अपने जीवन में उसके लिए कुछ कर न सकी । केवल जन्म देने-भर की अपराधिनी हूं । चाहे क्वांरी रखिएगा , चाहे ~~xxx~~ विष देकर मार डालिएगा , पर कुपात्र के गले न मढ़िएगा , इतनी ही आप से विनय है । " 49

निर्मला के स्थान पर आज यदि किसी इस वर्ग की स्त्री मरेगी तो वह भी ऐसा ही कहेगी , इससे ज्यादा प्रासंगिकता उपन्यास की और क्या हो सकती है । नारी-जीवन की यथार्थता के संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय सही कहते हैं । यथा —

" All women can not revolt and dommed to accept a life not of their choice. The author did not seek to sidetrack this reality and eventually He is more realistic than in his Former moveis in this regurd " 50

अभिप्राय यह कि प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का वस्तुनिष्ठ यथार्थवादी अभिगम दृष्टिगत होता है ।

गुबन :

"गुबन" सन् 1930 का उपन्यास है , परन्तु बहुत पहले सन् 1907 में उर्दू में "किशना" नाम से प्रेमचन्द [तब नवाबराय] उसे लिख चुके थे । "गुबन" उसका ही परिवर्द्धित एवं परिमार्जित रूप है । भारतीय समाज के मध्यवर्ग के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास सदैव याद किया जाएगा ।

उपन्यास के पुनर्मूल्यांकन के पूर्व उसकी प्रमुख घटनाओं पर एक दृष्टिपात करना समुचित रहेगा । उपन्यास का नायक रमानाथ एक दुलमुल व्यक्तित्व का पात्र है । रमानाथ के पिता

दयानाथ कचहरी में नौकरी करते हैं । रिश्वत लेने की सुविधा होने पर भी वे उसे हराम समझते हैं । उपन्यास का प्रारंभ रमानाथ की शादी के साथ होता है । जालपा के साथ रमानाथ की शादी , बचपन से ही जालपा का आभूषणों के प्रति विशेष आकर्षण , उनमें भी चन्द्रहार का आकर्षण , और गहनों में चन्द्रहार को न पाकर उसका कुछ-कुछ दुःखी हो जाना , देखादेखी हैसियत से अधिक खर्च करने के कारण दयानाथ का कर्ज में डूब जाना , लेनदारों के तगादे , बाप-बेटे की तकरार , जालपा के गहनों को उड़ाकर उसे चोरी का रूप देना , रमानाथ की बड़ी-बड़ी डींगें , जालपा का बहुत दुःखी रहना , रमानाथ का म्युनिसिपालिटी में तीस रुपये माहवार पर नौकरी करना , जालपा को खुश करने छः सौ रुपये उधार पर सर्राफ से गहने बनवाना , जालपा का हाईकोर्ट के एडवोकेट इन्द्रभूषण की पत्नी रतन से बहनापा , जालपा के जड़ाऊ कंगन पर रतन का मुग्ध होना , वैसे ही कंगन बनवाने के लिए रतन का जालपा को छः सौ रुपये देना , रमानाथ का यह सोचना कि इन छः सौ से पुराना कर्ज चुकते करके वह पुनः उसी सर्राफ से कंगन ले लेगा , सर्राफ का मुकर जाना , रतन के तगादे , चुंगी के पैसे घर लाना , बाद में आकर जालपा का रतन को पैसे लौटा देना , गबन की फजीहत से बचने के लिए रमानाथ का भाग जाना , इधर जालपा को सही परिस्थिति का ज्ञान होना , गहने बेचकर चुंगी में रकम जमा करवा देना , अतः रमानाथ पर कोई मुकदमे का न चलना , रास्ते में देवीदीन खटिक से रमानाथ की भेंट , देवीदीन के यहाँ रहना , देवीदीन को तमाखू छुड़ा देना , पुलिस से डरते-भागते रहना , एक दिन वैसे ही पुलिस की गिरफ्त में आ जाना, रमानाथ का बयान , इलाहाबाद फोन पर पूछताछ , पुलिस को वास्तविक स्थिति का ज्ञान होना , परिस्थिति का फायदा उठाते हुए पुलिस की रमानाथ को क्रान्तिकारियों के केस में मुखबिर बनाने

बनाने की योजना, जालपा का रमानाथ को ढूंढते हुए कलकत्ते पहुंचना, पति का इलाज कराने रतन का भी पहुंचना, रमानाथ की झूठी गवाही के कारण क्रान्तिकारियों बड़ी-बड़ी सजाएं होना, देवीदीन खटिक और जालपा का इस बात से दुःखी होना, रतन के पति का मर जाना, रतन के देवर द्वारा इन्द्रभूषण की तमाम संपत्ति पर कब्जा कर लेना, जोहरा नामक एक वेश्या के प्रयत्नों से जालपा की स्थिति का पता चलना, रमानाथ का बयान बदलने के लिए राजी होना, जज के सामने सबकुछ सच-सच कह देना, क्रान्ति-कारियों का छूट जाना, रमानाथ जालपा दयानाथ जोहरा आदि सभी का गांव में खेती करना, जोहरा का गंगा में बहकर मर जाना जैसी अनेकानेक घटनाएं उपन्यास में वर्णित है।

प्रेमचन्दजी का यह उपन्यास मध्यवर्ग के यथार्थ चित्रण के लिए एक प्रतिमान कायम करता है। मध्यवर्ग का जितना सटीक वर्णन इस उपन्यास में हुआ है, शायद ही किसी उपन्यास में हुआ हो। इस संदर्भ में डा. मन्मथनाथ गुप्त यथार्थ ही कहते हैं —

" हम समझते हैं कि यह पुस्तक प्रेमचन्द के सबसे अच्छे उपन्यासों में है। इसमें मध्यवित्त वर्ग का जैसा चित्र खींचा गया है, उसकी कमजोरियां जिस नग्न रूप में हमारे सामने× सम्मुख आती हैं, वह भारतीय साहित्य में अतुलनीय है। शरद बाबू अपने उपन्यासों में मध्यवित्त वर्ग को चित्रित करते हैं, जहां तक स्त्री-पुरुष के संबंध हैं, इस वर्ग को वे बहुत सुन्दर रूप से चित्रित करते हैं, उस क्षेत्र में उनका अभी तक कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। मूक अवहेलिता, निर्यातिता नारी उनके उपन्यास में वाचाल हो जाती है, किन्तु वे भी किसी उपन्यास में यह नहीं दिखा पाये कि यह जो मध्यवित्त वर्ग है, वह कितना सड़ा-गला है, तथा उसके अन्दर क्या-क्या रोग हैं,

जो उसे पंगु बनाकर समाज के नेता वर्ग होने में असमर्थ कर देते हैं। इस वर्ग ने, जब से अंग्रेज आये, भारतवर्ष को बहुत कुछ दिया, कभी इसका स्वर्णयुग था, किन्तु अबइसके दिन ढल चुके हैं, समाज के नेतृत्व के लिए किसी और वर्ग को सामने आना चाहिए। आंशिक रूप से शिथिल होते हुए भी हम गबन में हम यह जो एक वर्ग का सजीव चित्रण पाते हैं, यह कुछ कम खेल नहीं है। यद्यपि मामूली समालोचकों ने इस उपन्यास को अधिक महत्व नहीं दिया, किन्तु यह उपन्यास बहुत यथार्थवादी है, इसमें संदेह नहीं। .... प्रेमचन्द के प्राक्-गोदान युग के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथार्थ-वादी हैं, एक निर्मला और दूसरा गबन।" 51

डा॰ गुप्त के उपर्युक्त मत से हम पूर्णतया सहमत हैं। भारतीय समाज का यह वर्ग पूर्णतया खोखला हो चुका है। जहाँ तक सामाजिक-पारिवारिक रिश्तों का संबंध है, वे सच की बुनियाद पर कायम होने चाहिए। परन्तु यहाँ वे झूठ और अविश्वास पर कायम हैं। बाप बेटे से, बेटा बाप से, माँ बेटे से, बेटा माँ से, पति पत्नी से, पत्नी पति से झूठ और केवल झूठ बोल रहे हैं। योरोप के मध्यवर्ग का यह झूठ उन्हें काम में आ रहा है —

प्रेम और भक्ति में झूठ नहीं चल सकता, परन्तु यहाँ तो झूठ की पतवार से ही प्रेम की नाव को खेया जा रहा है। फिर कुछ भी गलत-सलत करो हमारे धर्म-ग्रन्थों में उसके प्रमाण मिल जायेंगे। महाभारत तक में कहा गया है —

" न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पंचानृता न्याहुरपातकानि ॥" 52

अर्थात् हंसी में, स्त्रियों के साथ, विवाह के समय, जब जान पर आ बने तब और संपत्ति की रक्षा के लिए — इन पाँच

अवसरों पर झूठ बोलना पाप नहीं है । फिर वह क्या गया ?

वस्तुतः यह झूठा दिखावा, झूठी शान, डींग उड़ाना इस वर्ग का चरित्र है । हिन्दी के कई आलोचकों ने इसे अलंकार-प्रेम की त्रासदी माना है, परन्तु यह अलंकार-प्रेम भी प्रकारान्तर से दिखावे के कारण ही होता है । पुरुष अपनी आमदनी को लेकर डींग उड़ाता रहता है, स्त्रियाँ अपने जेवरों को लेकर । इस मध्यवित्त वर्ग का झूठ ही ओढ़ना है और झूठ ही बिछौना है । यदि दयानाथ ने हैसियत से ज्यादा खर्च न किया होता, यदि रमानाथ ने अपनी पत्नी को अपने घर की माली हालत के बारे में सच-सच बता दिया होता तो घर से भागने की नौबत ही न आती । वस्तुतः मध्यवर्ग में जितना भी भ्रष्टाचार है, घूँस-रिश्वत का बोलबाला है, वह इस झूठे दिखावे के कारण ही है, झूठे रीति-रिवाजों के कारण है ।

दयानाथ को ईमानदार बताया है, पर वह भी बहू के गहनों को अगुआ करने में शरीक हैं । जालपा को आदर्श भारतीय नारी या पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है, या ऐसा आलोचक मानते हैं । पर उसके पति-प्रेम या पति-भक्ति की पोल यहाँ खोली गई है । जब रमानाथ उसके लिए गहने बनवाता है, उसके बाद से उसकी पति-भक्ति में बाढ़ आती है । ऊपर की आमदनी को वह भी खराब नहीं मानती । बल्कि सलाह देती है कि इसके बारे में रमानाथ अपनी माँ को न बतावे । वस्तुतः उपन्यास के उत्तरार्द्ध की जालपा कुछ आश्वस्त करती है ।

इस उपन्यास का सच्चा और ईमानदार पात्र तो देवीदीन खटिक है । उसके दोनों बेटे पिकेटिंग करते हुए शहीद हो गए हैं । वह सच्चा देशभक्त है । झूठी गवाही के कारण जब क्रान्तिकारियों को सजा हो जाती है, तब रमानाथ से वह नाराज हो जाता है । दानवीर सेठों और नाटकबाज नेताओं के बारे में उसकी धारणा ठीक नहीं है, दूसरे शब्दों में यथार्थ है । यथा – " सेठ की

लूट की मिल है । मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इनके मिल में होती है, और कहीं नहीं होती । आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से । चर्बी मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिया, कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे, तो तुरंत तलब कर लेता है । अगर साल में दो-चार हजार का दान न कर दे, तो पाप का धन कैसे पचाये ।" [53]

जहाँ तक ऐसे सेठों और उद्योगपतियों का सवाल है, वे आज भी बरकरार हैं और उसी तर्ज में गरीबों का शोषण कर रहे हैं । धर्म-विषयक और दान-पुण्य-विषयक उनके आचार-विचार भी वही हैं । अतः उपन्यास की प्रासंगिकता पर कोई आँच नहीं आ सकती ।

इसी प्रकार नेताओं के संदर्भ में देवीदीन जो कहते हैं, वह भी सौ फी सदी ठीक है । यथा — "गरीबों को लूट कर विलायत का घर भरना तुम्हारा काम है । हाँ, रोये जाओ, विलायती शराबें उड़ाओ, विलायती मोटरें दौड़ाओ, विलायती मुरब्बे और अचार चखो, विलायती बर्तनों में खाओ, विलायती दवाइयाँ पीओ, पर देश के नाम पर रोये जाओ ।" [54]

"गबन" उपन्यास अपने यथार्थ मध्यवर्गीय चित्रण के संदर्भ में बेजोड़ कहा जा सकता है । मध्यवर्ग के लोगों में प्रेम, द्वेष, सदाचार, पातिव्रत्य सभी बातों में दिखावा और ढकोसलों का ही जोर है । जो प्रेम असली हालत को न देखे, और पति को गहना देने का एक यंत्र मात्र समझे, वह प्रेम नहीं, प्रेम शब्द का उपहास है । [55]

यह मध्यवर्ग आज भी इन्हीं दुर्गुणों में कैद है । यह सतत एक प्रकार के भय से आतंकित रहता है कि कहीं वह सर्वहारा

वर्ग में न फंसा जाये । झूठा दिखावा और गलत और झूठी जीवन-सरणी , झूठे रीति-रिवाज ही उसे भ्रष्टाचार के लिए आमादा करते हैं । "सेवासदन" के दारोगा से लेकर "गबन" के रमानाथ तक भ्रष्टाचार इसीलिए करते हैं । और पुलिस ? उसका दमन और शोषण गरीबों के लिए आज भी वही है , बल्कि और भी ज्यादा खतरनाक ; वेश्या समस्या भी वहीं की वहीं है । अतः इस उपन्यास की प्रासंगिकता आज भी वही है , जितनी तत्कालीन समाज में थी ।

रतन के वो उद्गार हैं , क्या आज भी उतने ही प्रासंगिक नहीं है ? यथा — " बहिनों , किसी सम्मिलित परिवार में विवाह न करना , और अगर करना तो जब तक अपना घर न अलग बना लो , चैन की नींद मत सोना । " [56]

कर्मभूमि :

"कर्मभूमि" सन् 1932 का उपन्यास है । अपेक्षाकृत यह प्रेमचन्दजी की प्रौढ़काल की रचना है । इसका कथानक राजनीतिक तानों-बानों से बुना गया है । अछूतोद्धार , जमींदार-किसान संघर्ष , सूदखोरी आदि प्रश्न भी जुड़े गये हैं । [57] किन्तु यहाँ भी लेखक अभी "आश्रमों" आदि से मुक्त नहीं हुआ है । "प्रेमाश्रम" उपन्यास के प्रेमशंकर के प्रेमाश्रम की भाँति , यहाँ डा. शांतिकुमार का "सेवाश्रम" है । सेवाश्रम वह केन्द्र है , जहाँ से सारे नागरिक आंदोलन चलाते हैं । ग्रामीण क्षेत्रों का नेतृत्व अमरकान्त के पास है ।

इस उपन्यास के सन्दर्भ में डा. एस.एन. गणेशन लिखते हैं — " कथानक तथा पात्रों के जीवनवृत्तों के साथ-साथ इसमें

चित्रित वातावरण भी कम महत्व का नहीं है । अत्यंत विशाल पट-भूमि का उपयोग करने के कारण कथानक में तथा पात्रों के जीवन-वृत्तों के क्रमिक विकास में थोड़ी-बहुत शिथिलता आयी है । इसी कारण देश के तत्कालीन वातावरण को यथार्थ रूप में उपस्थित करने में लेखक को विशेष सफलता भी प्राप्त हुई है ।" 58

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश और विशेषतः सत्याग्रह आंदोलन पर आधृत है । संक्षेप में इसकी कहानी इस प्रकार है :

अमरकान्त बनारस के सेठ समरकान्त का पुत्र है । उस पर गांधीवाद का काफी प्रभाव लक्षित होता है । वह खद्दर पहनता है, चर्खा चलाता है तथा देशसेवा और समाजसेवा के कार्यों में लगा रहता है । समरकान्त चाहते हैं कि बेटा उनका व्यापार संभाले । अतः दोनों में रात-दिन खिच-पिच चलती रहती है । अमरकान्त का एक मित्र है - सलीम । पिता-पुत्र में अनबन के कारण कई बार अमरकान्त के पास स्कूल की फीस के पैसे भी नहीं होते, तब सलीम उसकी फीस भर देता है । अमरकान्त की माँ का देहान्त बचपन में ही गया था । समरकान्त दूसरा ब्याह करते हैं । उससे एक लड़की होती है, जिसका नाम है नैना । भाई-बहन में बहुत प्यार है । दूसरी पत्नी के निधन के बाद समरकान्त तीसरा ब्याह नहीं करते । सूना घर पुनः बस जाए इस हेतु से वे अमरकान्त का विवाह सुखदा से कर देते हैं ।

सुखदा की माँ विधवा है । सुखदा को उनकी तरफ से काफी अच्छी संपत्ति मिलने वाली है । वह अमरकान्त से जब-तब इसी बात से झगड़ती रहती है कि पिता के काम में हाथ बंटाने के बजाय वह फालतू के कामों में व्यस्त रहता है । डा. शांतिकुमार

जो एक गांधीवादी नेता है, उनका काफी प्रभाव अमरकान्त पर है। उनकी प्रेरणा से वह ग्राम-सेवा के कार्यों के लिए प्रायः देहातों में जाता रहता।

अमरकान्त और सुखदा में मनमेल नहीं है। अतः अमरकान्त सकीना नामक एक मुसलमान लड़की की ओर आकर्षित होता है। उसके कारण घर में और झगड़े बढ़ते हैं। अमरकान्त अपने पिता से साफ कह देता है कि उसके जीवन का लक्ष्य कुछ और है। खाना-पीना और धन-संचय करना उसके जीवन का मकसद नहीं है। अतः एक दिन वह घर से निकल पड़ता है और चमारों के एक गांव में जाकर रहने लगता है। इस प्रकार यहाँ से अछूतोद्धार का एक नया आयाम भी उपन्यास के साथ जुड़ता है।

अमरकान्त के जाने के बाद सुखदा की आँखें खुलती है। पति के खोये हुए प्यार को पाने के लिए वह भी सेवा-मार्ग में प्रवृत्त होती है। डा॰ शांतिकुमार के नेतृत्व में शहर में अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर एक आंदोलन चल रहा था। सुखदा उसमें भाग लेने लगती है। आंदोलन सफल होता है।

उधर अमरकान्त चमारों के गांव में रहकर जनसेवा और जागृति का कार्य कर रहा है। उस इलाके के जमींदार एक महन्तजी हैं, जो अपने असामियों का बड़ा शोषण करते हैं। अतः अमरकान्त के नेतृत्व में लगानबन्दी का एक आंदोलन चल पड़ता है। यह आंदोलन बिलकुल गांधीवादी तरीके से चल रहा है। अमरकान्त का मित्र सलीम आई.सी.एस. करके उसी इलाके में नियुक्त होता है। पहले तो सरकार के हुक्म से वह अमरकान्त को गिरफ्तार करता है, परंतु बाद में वह भी किसानों का पक्ष लेता है। अतः उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है। वह भी उस आंदोलन में शरीक हो जाता

है और उसे भी गिरफ्तार कर लिया जाता है । अमरकान्त के
पिता भी बेटे की खोज में गाँव जाते हैं और वे भी उसी रंग में
रंग जाते हैं और किसान-आंदोलन में शरीक होकर जेल चले जाते
हैं । शहर में अछूतों को लेकर जो आंदोलन चल रहा है , उसमें
डा० शान्तिकुमार , सुखदा , सुखदा की माँ रेणुकादेवी आदि
लोग जेल चले जाते हैं । गाँव में किसानों का लगानबन्दी का जो
आंदोलन चल रहा था , अंततः सरकार को उसमें झुकना पड़ता है ।
गवर्नर के हुक्म से एक कमेटी बनती है , जिसमें पाँच सदस्य हैं ।
इन पाँच सदस्यों में अमरकान्त और सलीम को भी शामिल किया
गया है । गवर्नर के इस फैसले से प्रसन्नता की एक लहर-सी
फैल जाती है ।

इस मुख्य कथा के साथ मुन्नी नामक एक तेज-तर्रार नारी
की कथा भी चलती है । कुछ गोरों ने इसका अपमान किया था ।
कुछ दिन बाद पता चलता है कि एक भिखारिन-सी औरत ने एक
गोरे की छाती में छुरा भोंक दिया । यह भिखारिन वही मुन्नी
है । उस पर मुकदमा चलता है । अमरकान्त तथा उसके मित्रों
के प्रयत्नों से मुन्नी छूट जाती है । एक बच्ची को गोद में लेकर
उसका पति उसे लेने आता है और कहता है कि अब उसे बिरादरी
वालों की कोई परवाह नहीं है और वह मुन्नी को स्वीकारने के
लिए तैयार है । परन्तु मुन्नी यह कहकर अपने पति के साथ नहीं
जाती कि अपने स्वार्थ के लिए वह अपने पति तथा बच्ची के
भविष्य का सत्यानाश करना नहीं चाहती और वह कहीं चली
जाती है । जब अमरकान्त सकीना के प्रेम में असफल होकर गाँव
चला जाता है , तब जिस गाँव में वह अपना सेवाकार्य शुरू
करता है , वहीं पर यह मुन्नी भी उसे मिल जाती है । एक
दिन अमर को ज्ञात होता है कि कहीं पास में कोई गाय मर
गई है और सब चमार उस मुर्दा गाय का माँस लेने गये हैं , तब

अमर मुन्नी से कहता है कि वह अब उस गाँव में न रहेगा और न किसी के यहाँ आना जायेगा । इस पर मुन्नी उन लोगों को बहुत समझाती है, पर वे टस से मस नहीं होते । तब अन्ततः मुन्नी सत्याग्रह का रास्ता अख्तियार करती है और कहती है कि जिसे मुर्दा गाय का माँस लेना हो वह पहले मुझ पर छुरी चलावे और तब आगे बढ़े । इस पर गाँववाले मान गये और अमर वहाँ रह गया । इस प्रकार यहाँ प्रेमचन्द जहाँ अस्पृश्यता का विरोध करते हैं, वहाँ उस समाज में जो गन्दगी और बुराई है, उसे भी दूर करने की चेष्टा करते हैं ।

नैना का विवाह सेठ धनीराम के बेटे मनीराम से हो जाता है । बनारस में जो आंदोलन चल रहा था, उसमें सुखदा, सकीना, पठानिन, मुन्नी, रेणुकादेवी आदि सभी जेल में थे । अतः नैना को आंदोलन का नेतृत्व लेना पड़ता है । मनीराम उसे बहुत समझाता है, पर जब वह नहीं मानती तब वह उस पर गोली चला देता है ।

एक वस्तुनिष्ठ कलाकार के नाते प्रेमचन्द अपने युग की स्थितियों का यथार्थ आकलन करते हैं और यह तो एक सुविदित तथ्य है कि वह युग गांधीवाद का युग था ; किन्तु साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि प्रेमचन्द कभी-कभी उसका अतिक्रमण भी करते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में जहाँ उन्होंने अछूतों की समस्या को उठाया है, वहाँ वे गांधीवाद से कुछ आगे निकल गए हैं । गांधी कहीं भी यह कहते नहीं सुने गये कि मंदिरों में सेठ-महाजनों के भगवान रहते हैं, किन्तु प्रेमचन्द शांतिकुमार की ज़बान से अछूतों को यह कहते हैं -- " तुम्हें इतनी भी खबर नहीं कि यहाँ सेठ महाजनों के भगवान रहते हैं । " थोड़े-से शब्द हैं, किन्तु इतने में सारी समस्या को कितना स्पष्ट कर

दिया है । भगवान भी दो हैं , एक तो सेठ महाजनों के , एक गरीबों के । " [59] यहाँ प्रकारान्तर से प्रेमचन्द शायद यही व्यंजित करना चाहते हैं कि जब ये लोग तुम्हें मंदिर में नहीं जाने देते , तो तुम्हें भी ऐसे भगवान की क्या जरूरत है । यह अकारण नहीं है कि समूची निर्गुण काव्यधारा मंदिरों और मूर्तिपूजा को नकारती है । कहना न होगा कि सुंदरदास जैसे एकाध अपवाद को छोड़कर लगभग तमाम-तमाम निर्गुणिये संत छोटी जातियों से सम्बद्ध रहे हैं ।

राज्य के संदर्भ में भी शांतिकुमार की टिप्पणी विचारणीय है । यथा — " पढ़े-लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाए रखने के लिए एक संगठन बना लिया है । इसीका नाम गवर्नमेण्ट है — गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवर्नमेण्ट का खात्मा हो जाता है । " [60] वैज्ञानिक तरीके से मार्क्सवाद की व्याख्या करने वाला भी इतना अच्छी तरह से बातों और तथ्यों को नहीं रख सकता ।

अतः समस्या चाहे किसानों और गरीबों के शोषण की हो , चाहे पुलिस और सरकार के दमन की , चाहे अछूतों की , चाहे उनके मंदिर प्रवेश की , यह असन्तोष आज भी उतना ही मौजूद है , जितना तब था । शोषण के तरीके बदल गए हैं । बल्कि शोषण की मात्रा बढ़ गयी है । शहरवालों को लगता है कि अब अछूत समस्या नहीं रही है , किन्तु हकीकत यह है कि दूर-दराज के गांवों में यह समस्या आज भी अपने विकरालतम रूप में मौजूद है । अभी कुछ वर्ष पूर्व एक दलित पुलिस कर्मचारी को मुंबई जैसे महानगर में इसलिए मार दिया गया था कि बरसात से बचने के लिए कुछ समय के लिए वह मंदिर में चला गया था । बिहार में तो दलितों का सामूहिक संहार जमींदार की सेनाओं द्वारा हो रहा है । गाँव के गाँव आतंक के साये में

थर्र-थर्र काँप रहे हैं । सम्प्रति केतन मेहता द्वारा निर्देशित टी.वी. धारावाहिक में ~~प्रधानमंत्री~~ " प्रधानमंत्री " में इसी प्रकार के एक सामूहिक नर-संहार को दिखलाया गया था । [61]

गोदान :
======

"गोदान" प्रेमचन्दजी का अंतिम सम्पूर्ण उपन्यास है । यह सन् 1936 का उपन्यास है । उसी वर्ष प्रेमचन्दजी का निधन हो गया था । औपन्यासिक कला की दृष्टि से यह प्रेमचन्दजी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । उसका कैनवास-फलक विस्तृत है । कुछ आलोचकों के मतानुसार उसमें नगर और ग्राम जीवन की अलग-अलग कथाएँ हैं, किन्तु ऐसा नहीं है । ग्राम्य-जीवन की कथा नगर-जीवन के साथ जुड़ी हुई है, बल्कि दोनों एक दूसरे के बिना अधूरी है । उपन्यास कृषक-समाज के शोषण को उकेरता है और यह शोषण का चक्र ऊपर से नीचे, गांव से नगर तक फैला हुआ है । अब इस श्रृंखलीकरण में शोषण का व्याप और भी बढ़ जाएगा । "गोदान" की कथा संक्षेप में इस प्रकार है :

उपन्यास का नायक होरी एक मामूली किसान है । उसकी पत्नी का नाम धनिया है । छः संतानों में केवल तीन जीवित रहती हैं — एक लड़का गोबर और दो लड़कियाँ सोना और रूपा । वहाँ के जमींदार रायसाहब अमरपालसिंह के यहाँ ~~होरी~~ होरी जब-तब सलाम बजाने पहुंच जाता है । उसके कारण गांव के दूसरे किसानों में भी उसकी साख है । होरी के मन में गाय की बड़ी साध है । अतः विधुर ग्वाला भोले की विवाह करवा ~~देने~~ देने का आश्वासन देकर उधार में एक गाय वह ले आता है । सारा गांव होरी की गाय देखने आता है, केवल उसके भाई नहीं आते । होरी पहले तो अपनी बेटी रूपा को भाई के यहाँ भेजना चाहता है, पर धनिया झिड़क देती है । इस पर चुपके से भाई के घर की तरफ जाने लगता है ।

वह उन लोगों की बातें छिपकर सुन लेता है । एक भाई कह रहा था — "बेईमानी का धन जैसे आता है , वैसे ही जाता है । भगवान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी । " 62 भाइयों की बात सुन-कर होरी का मन खट्टा हो गया । वह उलटे पांव लौट आया ।

ईर्ष्या के कारण हीरा गाय को विष खिलाकर मार डालता है । खबर थाने पर पहुंचती है । दारोगाजी आ धमकते हैं । तब हीरा को बचाने के लिए वह तीस रुपये का कर्ज भी लेता है । हीरा मारे लाज के भाग जाता है । होरी उसके खेतों को देखता है । वह अपने खेतों में धान न रोप सका , पर हीरा की पत्नी पुनिया के खेतों में रातभर जाग कर भी धान रोपे । होरी के इस स्वभाव के कारण धनिया और गोबर दोनों नाराज रहते हैं ।

गाय वाले प्रसंग के बाद गोबर बार-बार अहिराने जाता था । इसमें भोला की लड़की झुनिया से उसे प्रेम हो जाता है । झुनिया को गोबर से गर्भ रह जाता है । झुनिया होरी के घर आ जाती है । गोबर भाग जाता है । होरी पहले तो झुनिया को निकाल बाहर करने की बात करता है , पर ज्यों ही झुनिया कहती है — " दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है , मुझे दुरदुराओ मत । " 63 होरी का दिल पसीज जाता है ।

झुनिया को आश्रय देने के कारण पंचायत उस पर सौ रुपये का तावान ठोक देती है । धनिया तैयार न थी , पर होरी सारा अनाज दे देता है । वह किसान से मजूर हो जाता है । उस समय होरी कहता है — " मजूरी करना कोई पाप नहीं है । मजूर बन जाय तो किसान हो जाता है । किसान बिगड़ जाय तो मजूर हो जाता है । मजूरी करना भाग्य में न होता तो यह सब विपत्ति क्यों आती ? क्यों गाय मरती ? क्यों लड़का नालायक निकल जाता ? " 64

गोबर शहर भाग गया था । पहले उसने मजदूरी की । फिर कुछ रुपये बचाकर खोंचा लगाने लगा । कुछ रुपये कमाये तो सोचा कि गांव जाकर अब बीबी को बुला लिया जाए । अतः वह अपने गांव आता है । तब तक होरी मजूर हो चुका था । गोबर के एक बच्चा हो गया था । गोबर के ठाठ-बाट देखकर पंडित दातादीन अपना कोई पुराना हिसाब निकालता है और होरी को कहता है कि उस पर उनके कुल दो सौ रुपये निकलते हैं । होरी ने कोई आठ-नौ साल पहले दातादीन से तीस रुपये लिये थे । उन तीस रुपयों के सूद के साथ वह अब दो सौ मांगता है । गोबर ठीकरे से जमीन पर हिसाब लगाकर कहता है कि दस साल में तीस रुपयों का सूद ज्यादा से ज्यादा भीखरी होता है । मूल के साथ हुए छाछठ । उसके बदले सत्तर रुपये ले लो । उससे ज्यादा एक कौड़ी भी न मिलेगी । दातादीन यह कहकर चला जाता है कि यदि वह ब्राह्मण है तो पूरे दो सौ रुपये लेगा । इस पर होरी भी सोचता है कि ठाकुर या बनिये के रुपये होते तो ज्यादा चिन्ता की बात न होती , पर यह तो ब्राह्मण के रुपये । उसकी एक पाई भी दब गयी तो हड्डी तोड़कर निकलेगी ।[65]

इन रुपयों के संदर्भ में होरी और गोबर में मनमुटाव हो जाता है । गांव के नेता गोबर को झुकाने के लिए एक दूसरी चाल चलते हैं । होरी ने लगान चुकते कर दिया था , पर अपने सीधेपन में उसकी रसीद न ली थी । इस बात को लेकर होरी को फंसाने का उपक्रम रचा जाता है । गोबर किसी तरह नोखेराम को मनवा लेता है कि लगान चुकता हो गया है । पर इन सब बातों से उसका मन भर जाता है और वह शहर लौट जाने का फैसला कर लेता है । इस सन्दर्भ में धनिया और झुनिया की लड़ाई हो जाती है । जब गोबर का बिस्तर बंध जाता है तो होरी रुंआसे स्वर में कहता है — "बेटा तुमसे कुछ कहने का मुंह तो नहीं है , किन्तु कलेजा नहीं मानता,

क्या जरा जाकर अपनी अभागिन माता के पाँव छू लोगे ? , तो कुछ बुरा न होगा ? जिस माता की कोख से जन्म लिया , और जिसका रक्त पीकर पले हो , उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते ? [६६] इस पर गोबर कहता है कि मैं उसे अपनी माँ नहीं मानता और वह झुनिया को लेकर शहर चला जाता है ।

गोबर शहर आया तो उसे ज्ञात हुआ कि उसके अड्डे पर अब कोई दूसरा खोंचा लगाता था । इस बीच में उसका लड़का भी मर जाता है । गोबर शक्कर की मिल में मजदूरी करने लगता है । मिल में हड़ताल हो जाती है । नये-पुराने मजदूरों में लड़ाई होती है । उसमें गोबर बुरी तरह से घायल होता है । कई दिनों बाद वह ठीक होता है । ठीक होने पर पन्द्रह रुपये महीने पर मालती के यहाँ वह माली का काम करने लगता है । उसका दूसरा लड़का बीमार हो गया था । मालती की देख-रेख में वह भी ठीक हो जाता है ।

होरी की माली हालत इतनी खराब हो गयी कि उसके खेत बेदखल होने जा रहे थे । तब इस स्थिति से उबरने के लिए पं. दातादीन उसे एक रास्ता सुझाते हैं कि वह अपनी बेटी रूपा का ब्याह रामसेवक से कर दे तो उसका काम बन सकता है । रामसेवक लगभग होरी की उम्र का था । होरी से दो-चार साल छोटा होगा । जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोटें सही थीं , मगर यह चोट सबसे गहरी थी । विवाह के अवसर पर गोबर को भी बुलाया गया । घर की दशा देखकर उसे इतनी निराशा हुई कि वह तुरन्त लौट गया । रूपा का विवाह हो गया । रूपा इस जीवन से खुश है । बहुत दिनों के बाद हीरा लौट आता है । वह पागल हो गया था । दोनों भाई खूब प्रेम से मिलते हैं । मजूरी करते हुए

होरी को लू लग जाती है। वह खेत में ही लुढ़क जाता है। उठाकर घर लाया जाता है। अंत में होरी धनिया से कहता है —

" मेरा कहा-सुना माफ करना धनिया ! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। अब तो यहाँ के रुपये क्रिया-कर्म में जायेंगे। रो मत धनिया, कब तक जिलायेगी ? सब दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे। " 67

चारों तरफ से आवाजें आ रही थीं — " गोदान करा दो, अब यही समय है। " 68

धनिया यंत्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली — महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा, यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी। 69 यह है गोदान का अंत। न कोई आदर्शवादी समाधान, न कोई हल। इस अंत को लक्षित करते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी "गोदान" को एक आदर्शवादी रचना घोषित करते हैं। 70 किन्तु "गोदान" का यह और ऐसा अंत ही उसे एक वस्तुनिष्ठ यथार्थवादी उपन्यास के रूप में स्थापित करता है। उपन्यास यदि आदर्शवादी होता तो अन्त में उसका कोई सुधारवादी हल जरूर प्रस्तुत होता। उपन्यासकार शायद यही संकेतित करना चाहता है कि "मरजादा", सामाजिक नीति-नियम और ढकोसलों को ढोने वाले सीधे-सादे लोगों का यही अंजाम हो सकता है। अतः यह होरी का ही नहीं प्रेमचन्द की आस्था का भी गोदान है।

मुख्य कथा तो होरी की ही है, किन्तु उसके समानान्तर अनेक अन्य कथाएं और उपसंहार हैं, जो उपन्यास के फलक को विस्तृति और समुचित पृष्ठभूमि को निर्मित कर उसके यथार्थवाद

को पुष्ट करते हैं ।

इसके साथ रायबहादुर अमरपालसिंह , भोला अहिर , मेहता तथा मालती , पं. दातादीन , नोखेराम , गोबर और झुनिया , रूपा और रामसेवक , सिलिया चमारिन , सरकारी शोषण-तंत्र और पुलिस आदि के अनेक प्रसंग और उपसंहार आते हैं जिनमें हमें प्रेमचन्द की परिवर्तित दृष्टि का परिचय मिलता है ।

रायसाहब अमरपालसिंह उस इलाके के जमींदार हैं । वे एक कांग्रेसी जमींदार हैं । अपने पूरे वर्ग के प्रतीक हैं । उनके बारे में लेखक की टिप्पणी है — " पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था । कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये । तबसे उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी । ये नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो , या डांड या बेगार की कड़ाई कुछ कम हो , मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी । रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक नहीं लगता था । " 71 प्रेमचन्द की पैनी व्यंग्य-शैली यहां द्रष्टव्य है — " रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेलजोल बनाए रखते थे । उनकी नजरें और डालियां और कर्मचारियों की दस्तूरियां जैसी की तैसी चली आती थीं । " 72

लेखक ने यहां प्रकारान्तर से रायसाहब के मुंह से अपने वर्ग की बुराई भी करवायी है । रायसाहब अपना रोना होरी के सामने रोते हैं , केवल होरी का साधन रूप में इस्तेमाल करने के लिए , तथापि अपने वर्ग का अच्छा विश्लेषण वे करते हैं । यथा- " नहीं सह सकता उनकी हंसी , जो अपने बराबर के हैं , क्योंकि उनकी हंसी में ईर्ष्या , व्यंग और जलन है । और वे क्यों न हंसेंगे । मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर

हँसता हूँ, और दिल खोलकर, तालियाँ बजाकर। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हम में से किसी पर डिग्री हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय, किसीका जवान बेटा मर जाय, किसीकी विधवा बहू निकल जाय, किसीके घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथों पिट जाय, तो उसके और सभी भाई उस पर हँसैंगे, बगलें बजायेंगे, मानो सारे संसार की संपदा मिल गयी है। और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं। अरे, और तो और, हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं, और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं, और आज मर जाऊँ तो घी के चिराग जलाएं।" [73]

अतः कहा जा सकता है कि जैसे "गबन" मध्यवित्त वर्ग का कच्चा-चिट्ठा है, वैसे "गोदान" में लेखक ने उच्चवर्ग-सामंतवर्ग के चरित्र को भलीभाँति उकेरा है। प्रोफेसर मेहता रायसाहब से कहता है — " मानता हूँ, आपका आपके असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं, इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है। गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है।" [74]

रायसाहब का दूसरा आलोचक गोबर है। होरी के साथ उसकी जो बात होती है, उसमें यह स्पष्टतया झलकता है—

"यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये हैं, उनका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या ?

" यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है। "

"यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज़ भगवान का भजन करते हैं। "

"किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है ? "

"अपने बल पर नहीं। "

" नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे ? इसलिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान का भजन भी इसीलिए होता है, भूखे नंगे रहकर भगवान का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दें तो हम आठों पहर भगवान का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय। " 75

रायसाहब, मि. खन्ना, तन्खा आदि सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। कमजोर और गरीब लोगों का, किसानों और मजदूरों का शोषण करना ही उनका काम है। ऐसे ही लोग आगे चलकर राजनीति की बागडोर थामने वाले हैं, यह प्रेमचन्दजी ने बहुत पहले ही भांप लिया था।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने मालती नामक एक आधुनिक नारी की सृष्टि की है। शुरू में उसको तितलीनुमा बताया है, जो "गोदान" के कई शहराती पात्रों को अपनी उंगली

पर नचाती है । पर बाद में लेखक उसके परिवर्तित रूप को दिखाते हैं । प्रोफेसर मेहता के संग वह सेवा-मार्ग को अंगीकृत करती है । मेहता और मालती के प्रेम-संबंध के विषय में लेखक कहते हैं कि उसमें रूप का आकर्षण कम, गुणों का आकर्षण ही अधिक था । इसके संदर्भ में कहा गया है —

"जिसे सच्चा प्रेम कहते हैं, केवल एक बंधन में बंध जाने के बाद ही पैदा हो सकता है । इसके पहले जो प्रेम होता है, वह तो रूप की आसक्ति मात्र है, जिसका कोई टिकाव नहीं, मगर इसके पहले यह निश्चय तो कर लेना ही था कि जो पत्थर साहचर्य के खराद पर चढ़ेगा, उसमें खरादे जाने की क्षमता भी है या नहीं ।" 76

इस प्रकार यहाँ भी प्रेमचन्दजी का प्रेम और विवाह संबंधी दृष्टिकोण परंपरागत न होकर प्रगतिशील है । यहाँ उनका इशारा "कोर्टशिप" की ओर है, जिसे निश्चय ही उस समय को देखते हुए एक प्रगतिवादी आयाम या दृष्टिकोण कहा जा सकता है ।

इस उपन्यास में पं. मातादीन और सिलिया चमारिन का प्रेम-प्रसंग भी आता है । इस संदर्भ में प्रेमचन्द की सोच कुछ और आगे बढ़ गयी है । मातादीन पं. दातादीन का लड़का है । वह सिलिया से फंसा हुआ है, या यों कहना चाहिए कि सिलिया को उसने फंसाकर रखा है । इसमें उसका स्वार्थ है । खेती का जितना काम सिलिया करती है, कोई ब्राह्मण-कन्या तो कर ही नहीं सकती । सिलिया के साथ उसके सब प्रकार के संबंध हैं, किन्तु लोगों के आगे वह उसका छुआ पानी नहीं पीता है । इस ढकोसले से आरीज आते हुए सिलिया की माँ एक दिन कहती है —" उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पीओगे । तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं । हमें ब्राह्मण

बना दो । हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है । जब यह सामर्थ्य नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो । हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो । हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो ।" [77] ऐसा कहकर कुछ चमार जबरदस्ती मातादीन के मुंह में हड्डी का टुकड़ा डालकर उसे चमार बना देते हैं । बाद में काशी के पंडितों द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है, पर अंततः वह स्वयं इस ढकोसलापन जीवन से ऊबकर उसे त्याग देता है और [illegible] सिलिया को पत्नी-रूप में स्वीकार कर उसके साथ रहने लगता है ।

इसमें लेखक ने भोला नामक ग्वाले की त्रासदी को भी चित्रित किया है । भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गयी थी और वह रंडुआ हो गया था । वह होरी के सामने अपनी व्यथा रखता है — "जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पांव टूट जाते हैं । मेरा तो घर उजड़ गया महतो । कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं ।" [78]

भोला को दूसरी शादी की लालसा थी । होरी उसीका फायदा उठाते हुए कोई अच्छी औरत की बात करके उससे गाय उधार ले आता है । होरी तो कोई रिश्ता नहीं करा सकता, पर अन्ततः भोला एक जवान स्त्री से शादी कर लाता है । झुनिया भोला की ही लड़की थी, जो गोबर के साथ शादी कर लेती है । इसका अर्थ यह हुआ कि भोला काफी वयस्क है । नये विवाह के बाद भोला की घर में नहीं पटती, अतः वह स्त्री को लेकर नोखेराम के आश्रय में चला जाता है । भोला की स्त्री नोखेराम से फंस जाती है और उसकी बदौलत वह अपने को गांव की जमींदारनी समझने लगती है । भोला बापित

घर लौट जाना चाहता है, पर उसकी स्त्री इसके लिए राजी नहीं होती, क्योंकि नोखेराम के कारण वह पूरे गांव में चौधराइन बनी घूमती है। नोखेराम जमींदार का कारिन्दा है। अतः उसका कोई नाम नहीं लेता। भोला की स्थिति तो बड़ी विचित्र हो जाती है। उसकी स्त्री उसकी नहीं है। यह व्यथा बहुत बड़ी होती है। उपन्यास के प्रारंभ में ही भोला होरी से कहता है (उस समय उसकी दूसरी शादी नहीं हुई थी) — " आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देनी चाहिए। " 79 और अब उसकी ही औरत नोखेराम के साथ चालू है, और वह बेचारा कुछ कर नहीं सकता। इस प्रकार वृद्ध-विवाह और कारिन्दों के कारनामों का स्वरूप स्वतः सामने आ जाता है।

जहाँ वृद्ध-विवाह के कारण भोला की स्त्री नोखेराम से ताल्लुक रखने लगती है, वहाँ होरी की सबसे छोटी लड़की रूपा का ब्याह भी ऐसे वृद्ध से होने के बावजूद वह बेहद खुश है क्योंकि पेट की आग ही पेडू की आग से बड़ी होती है। रूपा ने अपने पिता के यहाँ अभाव ही अभाव देखा था और यहाँ हर चीज की इफरात है। रामसेवक अधेड़ होकर भी रूपा के लिए जवान था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-भावना में कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला। इसकी इस भावना की बुनियाद बड़ी गहरी है। अनाज से भरे हुए बखार, सिवान तक फैले हुए खेत, द्वार पर ढोरों की कतारें, ये सब उसमें किसी प्रकार की अपूर्णता का भाव आने नहीं देता। दूसरे उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घरवालों को, माता-पिता को सुखी देखना। दुःख और गरीबी के कारण बच्चे भी समझदार हो जाते हैं।

इस प्रकार "गोदान" अपने समय का दस्तावेज तो है ही, साथ ही भारतीय, विशेषतः उत्तरभारतीय, ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र भी उकेरता है। जो बात हमें समाजशास्त्रियों के मोटे-मोटे ग्रन्थों से प्राप्त नहीं हो सकती, वह हमें यहाँ सहजतया प्राप्त हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्दजी ने मजदूर और किसान उभय के जीवन की तुलना भी की है, जिनको हम क्रमशः पूंजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था के शोषित-वर्ग में रख सकते हैं। यथा — "वह गुलामी करता है, लेकिन भरपेट खाता तो है, केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहाँ तो जिसे देखो वही रौब जमाता है; गुलामी है, xxxxxxxxxxxx पर सूखी! मेहनत करके अनाज पैदा करो, और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो।" 80

इस प्रकार देखा जाए तो "गोदान" का बीज हमें "पूस की रात" कहानी में मिलता है। इस कहानी की मुन्नी धनिया का ही प्रतिरूप है और हल्कू होरी का। मुन्नी भी वही कहती है, जो होरी महसूस करता है — "न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती। मैं कहती हूँ तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये।" 81

"पूस की रात" में नीलगाय खेत चौपट कर देती हैं, "गोदान" में सामंतवादी समाज के शोषक नीलगायों की तरह उनके जीवन के खेत का सत्यानाश कर डालते हैं।

" गोदान" के प्रकाशन पर अश्कजी लिखते हैं — " प्रेमचन्द की आँखों के सामने सदैव तारीकी ही तारीकी रही है, उन्होंने गिरते, धंसते और विनाश की ओर शीघ्रता से अग्रसर होने वाले गांव ही देखे हैं, ऐसा नहीं। उन्होंने आदर्शगांव का स्वप्न भी देखा है, और उस स्वप्न की सत्यता आपको प्रेमाश्रम के लखनपुर में दृष्टिगोचर होगी।" 82 इस प्रकार प्रकारान्तर से अश्कजी प्रेमाश्रम को गोदान से बेहतर रचना शायद मानते हैं। उनको स्वप्न के टूट जाने का बेहद अफसोस है। इस संदर्भ में डा. मन्मथनाथ गुप्त के विचार ध्यानार्ह रहेंगे —

" किन्तु सत्य बड़े क्रूर होते हैं। करीब बीस वर्ष तक प्रेमचन्दजी इस स्वप्न के द्वारा परिचालित होकर साहित्य सृष्टि करते रहे, अब यदि इतने दिनों के बाद भी उनका स्वप्न सत्य नहीं हुआ, और उनकी कला में यह भ्रांति-भंग प्रतिफलित हुआ, तो इसमें दुःख की कौन-सी बात है? जो प्रवृत्ति प्रेमचन्दकी कला की प्रगतिशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण है, अश्कजी को उसी पर अफसोस है। हम तो इसके विपरीत यह समझते हैं कि इससे उनके क्रांतिकारित्व का परिचय मिलता है। एक लेखक भी जब एक लीक में पड़ जाता है, तो उसके लिए उससे मुक्त हो जाना बहुत कठिन हो जाता है, किन्तु फिर भी प्रेमचन्द अपनी सारी परंपरा से अलग होकर आगे की ओर बढ़ सके, यह बहुत ही अभिनंदनीय है।" 83

अपना ही अतिक्रमण करना, आगे की ओर, यह भी कोई बड़ा लेखक ही कर सकता है। दूसरे अश्कजी जिस बात के लिए अफसोस कर रहे हैं, उसके विपरीत उनका ही कथन उपर्युक्त गुप्तजी की बात को समर्थित करता है। यथा — " हमारे जमींदारों में एक भी मायाशंकर निकलता, तो प्रेमचन्द को अपनी जीवन-संध्या में निराश होकर "गोदान" न लिखना पड़ता।" 84

स्वप्नवादी -आदर्शवादी यूटोपिया से प्रेमचन्द बाहर आ सके , यह तो उनकी कला की जीत है , यही उनका सामर्थ्य है और इसी सबब तो "गोदान" को उनकी श्रेष्ठ रचना का दर्जा मिला है । एक सच्चा लेखक , ईमानदार लेखक अपने लेखन में भी निरंतर प्रयोग करता है । जीवन को , अतएव कला को हमेशा जरूरत रहती है नये प्रयोगों की । इस संदर्भ में डा. एस.एन. गणेशन के विचार उल्लेखनीय हैं —

"अप्रायोगिक आदर्शों , अपरीक्षित सिद्धान्तों , तथा अर्द्ध-परीक्षित वादों से अपने आपको सम्बद्ध रहने के कारण उनके पूर्वलिखित उपन्यासों में जो विफलताएँ या दुर्बलताएँ प्रकट हुई थीं । उन सबसे बहुत कुछ मुक्त होकर वे यहाँ जीवन-मात्र को व्यंजित करने वाली यथार्थवादी कला के राजपथ से अग्रसर होते दिखते हैं । ... कथा-कथन की कुशलता , चरित्र-चित्रण की सुचारुता , समस्याओं के अध्ययन की सूक्ष्मता आदि प्रेमचन्द के जितने गुण उनके प्रारंभिक उपन्यासों में प्रकट हो चुके थे वे इसमें अधिक निखरे हुए रूप में प्रत्यक्ष हुए हैं । पटभूमि अधिक विस्तृत हो गयी है , मनोभावों का विश्लेषण अधिक गहरा हो गया है ; , जीवन की व्याख्या का दृष्टिकोण अधिक संतुलित हो गया है ; और इस तरह "गोदान" यथार्थवाद की दृष्टि से उनके अन्य उपन्यासों से कोसों दूर आगे बढ़ आया है ।"[85]

कृषक-जीवन और मानव-जीवन की त्रासदी , छोटा किसान और खेतिहर मजदूर का शोषण , शहरी मजदूरों का शोषण , मिलों में मजदूरों की छंटनी , बेरोजगारी , शहरों में मजदूरों के स्वास्थ्य की समस्या , वृद्ध-विवाह की समस्या , गरीबी के कारण कन्या-विक्रय की समस्या ; संक्षेप में "गोदान" में निरूपित समाज सुधार की समस्याएं आज भी प्रासंगिक हैं ।

मंगलसूत्र (अपूर्ण) :

अकाल मृत्यु के कारण प्रेमचन्दजी का यह उपन्यास समाप्त नहीं हो सका । जिस रूप में यह प्रकाशित हुआ है उसे एक ही कहा जा सकता है । प्रेमचन्द-साहित्य के विकास या अंतिम दिनों का प्रेमचन्द का मानसिक उहापोह क्या रहा होगा उसे समझने के लिए यह उपन्यास उपयोगी सिद्ध हो सकता है ।

इसका नायक एक साहित्यकार है , जिनका नाम है — देवकुमार । देवकुमार के दो बेटे — संतकुमार और साधुकुमार ; एक पुत्री — पंकजा और पत्नी शैव्या है । संतकुमार की पत्नी का नाम पुष्पा है । संतकुमार वकील है , साधुकुमार ने बी.ए. कर लिया है । पंकजा के विवाह के लिए पत्नि शैव्या के हाथों में पांच हजार रुपयों की राशि देकर देवकुमार अपना मन ईश्वर-चिंतन में लगाना चाहते हैं ।

देवकुमार में एक प्रकार की अकड़ है और वे चाहते हैं कि राजा और रईस उनके द्वार पर आएँ और उनकी खुशामद करें । पहले साहित्य के अनुशीलन में उनका सारा समय व्यतीत होता था , किन्तु इधर कई दिनों से उन्हें साहित्य से अरुचि हो चली थी । देवकुमार की अपने बड़े बेटे से नहीं पटती थी , छोटा बेटा साधुकुमार उनका विशेष ध्यान रखता था । पत्नी शैव्या यद्यपि देवकुमार के यौवन की रंगरेलियों से प्रसन्न नहीं थी , तथापि संतकुमार जो अपने पिता की उपेक्षा करता था और रात-दिन हाथ धोकर उनके पीछे पड़ा रहता था , यह उसे नापसंद था ।

देवकुमार ने अपने यौवन में बाप-दादों की जायदाद को अपने भोग-विलास के लिए औने-पौने दामों में बेच दी थी । अब उसकी कीमत लाखों पर पहुँच चुकी थी । संतकुमार इसी बात से

अपने पिता से खार खाए रहता था । वह मुकदमा वगैरह करके उस संपत्ति को हासिल करना चाहता था , पर मुकदमा लड़ने के लिए पैसे चाहिए जो उनके पास नहीं थे । इन पैसों के लिए वह अपनी पत्नी पुष्पा पर दबाव डालता है कि वह अपने पिता से दस हजार रुपये ले आवे । आज भी प्रतिदिन ऐसे कई किस्से अखबारों में आते रहते हैं , जिनमें ससुराल पक्ष के लोगों पर आर्थिक दबाव पड़ने पर वे उस दबाव को घर की बहू की ओर मोड़ देते हैं । इस संदर्भ में पति-पत्नी के अधिकार को लेकर जो बात चलती है उसमें पुष्पा कहती है कि वह अधिकार तो उसी क्षण मिल गया था जब उसकी गांठ संतकुमार से बंध गयी थी । इस पर संतकुमार कहता है कि ऐसा अधिकार जितनी आसानी से मिलता है , उतनी ही आसानी से छिन भी जाता है । 86

इधर संतकुमार एडवोकेट सिन्हा से मिलता है । वे दोनों सहपाठी थे , पर कानून के राह पर वे काफी आगे निकल गए थे । शानदार बंगले में रहते थे और बड़े-बड़े रईसों और हुक्कामों से उनकी दोस्ती थी । इसी कारण कानूनी तबके में उनका रौब था और सभी उनका लोहा मानते थे ।मन-गढ़ंत किस्से-कहानियों से वे मुकदमे में जान डाल देते थे । काल्पनिक होते हुए वास्तव का ऐसा मुलम्मा चढ़ाते थे कि सबकुछ स्वाभाविक ही लगे । उनकी फीस भी तगड़ी होती थी । पैसे से पैसे बनाने की xxxxxx हिकमत उन्हें आती थी । इसी कारण संतकुमार जहाँ एक मामूली-सा वकील बनकर रह जाते हैं , सिन्हा साहब एक प्रतिष्ठित एडवोकेट के रूप में सफलता की बुलंदियों को चूम रहे थे । इस समय भी हम देख रहे हैं कि ऐसे ही वकीलों की बोल-बाला है । अभी कुछ वर्ष पूर्व प्रदर्शित फिल्म "दामिनी" में ऐसे ही एक एडवोकेट मि. चढ्ढा को बताया हैकि जो कोई भी मुकदमा हारता नहीं है ।

मि॰ सिन्हा संतकुमार को मुकदमा जितने का तरीका बताते हैं कि उसके लिए उन्हें यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि उस समय देवकुमार का मस्तिष्क विकृत था । संतकुमार उसके लिए भी राजी हो जाता है । मि॰ सिन्हा संतकुमार को यह भी सलाह देते हैं कि वह जज साहब की लड़की तिब्बी पर डोरे डालने शुरु कर दें ताकि वक्त आने पर उन पर दबाव डाला जा सके । तिब्बी एक बड़े बाप की बिगड़ी हुई बेटी थी , अतः संतकुमार अपनी चालाकी से उसे वश में कर लेता है । तिब्बी के आगे वह हमेशा यह रोना रोता रहता है कि वह अनमेल विवाह का शिकार है । यह तरकीब भी हमारे समाज में अद्यावधि चल रही है । इसमें प्रेमचन्दजी ने हमारे न्यायतंत्र की पोल को भी खोलने का प्रयत्न किया है ।

मि॰ सिन्हा के पढ़ाये पाठ पर संतकुमार देवकुमार को डालना चाहता है , किन्तु देवकुमार अपनी आत्मा को बेचने के लिए तैयार नहीं होते । संतकुमार उन्हें समझाने की कोशिश करता है : " अगर आप इसे आत्मा को बेचना कहते हैं , तो बेचना पड़ेगा । इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है । और आप इस दृष्टि से इस मामले को देखते ही क्यों हैं ? धर्म वह है जिससे समाज का हित हो । अधर्म वह है जिससे समाज का अहित हो । इससे समाज का कौन-सा अहित हो जायगा , यह आप बता सकते हैं ? " इस पर देवकुमार कहते हैं — " समाज अपनी मर्यादाओं पर टिका हुआ है । उन मर्यादाओं को तोड़ दो और समाज का अन्त हो जायगा ।" [87]

देवकुमार संतकुमार को साफ कह देते हैं कि उन्हें अपना धर्म पत्नी और पुत्र से भी प्यारा है । इस पर संतकुमार बहुत बिगड़ता है और उसके मन में यह विचार भी आ जाता है कि अपने बाप को गोली मार दें । किन्तु मि॰ सिन्हा संतकुमार

को सलाह देते हैं कि वह धैर्य रखे और अपनी कोशिश का दामन थामे रहे । अपने तजुर्बों के आधार पर वे कहते हैं कि बाप को बेटा बहुत प्यारा होता है और एक बार जब नालिश दायर हो जायगी तो अपने बेटे को जिताने के लिए वह सबकुछ करने को तैयार हो जायँगे ।

संतकुमार के साथ जो कहा-सुनी होती है उसे लेकर देवकुमार के मन में उहापोह चलता है । मन में धर्म और समाज-व्यवस्था को लेकर तरह - तरह के विचार और तर्क-वितर्क चलते रहते हैं । एक तरफ उनकी धर्म-बुद्धि कहती है -- " यहाँ सभी को अपनी शक्ति और साधनों के हिसाब से उन्नति करने का अवसर है । " मगर तुरन्त दूसरी बुद्धि शंका प्रकट करती है -- " सबको समान अवसर कहाँ है ? बाजार लगा हुआ है । जो चाहे, वहाँ से अपनी इच्छा की चीज खरीद सकता है । मगर खरीदेगा तो वही जिसके पास पैसे हैं । " ..... " कहाँ है न्याय ? कहाँ है ? एक गरीब आदमी किसी खेत में बालें नोंचकर खा लेता है । कानून उसे सजा देता है । दूसरा अमीर आदमी दिन-दहाड़े दूसरों को लूटता है, और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है । कुछ आदमी तरह-तरह के हथियार बाँधकर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमाकर उन्हें गुलाम बना लेते हैं । वे लगान, टैक्स और महसूल तथा अन्य कितने ही नामों से उन्हें लूटना शुरू करते हैं, और आप लम्बे-लम्बे वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरेलियाँ मनाते हैं । यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ? यही न्याय है ? [44]

देवकुमार के उपर्युक्त कथन में जिस स्थिति का निरूपण हुआ है, उसमें आज भी कहीं कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है । बल्कि शोषण के तरीके और अजीब और बढ़ गए हैं । राष्ट्रीय स्तर पर भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि इधर के दो-तीन दशकों के इतिहास

को "घोटालाकाल" नाम देना पड़ेगा ।

अतः एक दिन देवकुमार सेठ गिरधरलाल के यहाँ पहुँचते हैं । वे उनके बीस हजार के कर्जदार थे । देवकुमार चाहते थे कि जायदाद बेचकर सेठ अपने पैसे ले लें और बाकी की रकम उनको दे दें । पर सेठ कब मानने वाले थे । लाखों की जायदाद क्या वे यों ही छोड़ दें ? अतः दोनों में काफी कहा-सुनी होती है और नौबत गाली-गुफ्ता तक आ जाती है ।

उसी रात मि. सिनहा और संतकुमार एक बार फिर उनपर जोर डालने आ पहुँचे । वे लोग कुछ कहें , इसके पहले देवकुमार ने कहा -- " तुम लोगों ने अभी तक मुकदमा दायर नहीं किया ? नाहक क्यों देर कर रहे हो ? " [89] उन दोनों के आश्चर्य और प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा । पर मुकदमे के लिए रुपयों की आवश्यकता थी । सदभाग्य से उसका भी रास्ता निकल आया । देवकुमार के भक्त उनका षष्ठीपूर्ति कार्यक्रम मनाना चाहते हैं । एक बड़ी रकम उनको इस अवसर पर प्रदान की जाय, ऐसी उनकी योजना है । राजा साहब उस कमेटी के सभापति बन गये । कुछ ही दिनों में वह रकम देवकुमार को अर्पित की गयी । देवकुमार के चेहरे पर गर्व , हर्ष , विजय और आत्म-संतोष के कारण प्रसन्नता छा गयी । यहाँ "मंगलसूत्र" समाप्त हो जाता है , बल्कि कहना चाहिए कि रुक जाता है , क्योंकि 8 अक्तूबर प्रातः साढ़े सात बजे उनका निधन हो जाता है । [90]

ऐसा लगता है कि जितना लिखा गया है वह तो केवल उसका प्रारंभ मात्र है । "गोदान" में कृषक-जीवन की त्रासदी है । "निर्मला" में नारी जीवन की त्रासदी मिलती तो है , किन्तु यहाँ शायद उसे और गहराने का उपक्रम होगा , ऐसा उसके शीर्षक

से संकेतित होता है । देवकुमार के माध्यम से कदाचित् साहित्यकार की वेदना को भी , और इस प्रकार अपनी वेदना को भी वे रेखांकित करना चाहते हों , यह बहुत संभव है । उपन्यास यदि पूरा होता तो शायद वह "गोदान" की कलात्मकता को भी लांघ जाता ।

उपन्यास का जितना अंश प्रकाशित हुआ है , उसमें भी कई विचार-सूत्र मिलते हैं । शैव्या भी अपने पति से , विशेषतः उनके यौवन-काल की लीलाओं से , प्रसन्न तो नहीं है , किन्तु वह मन मसोसकर रह जाती है । किन्तु संतकुमार की पत्नी पुष्पा कुछ तेज-तर्रार लगती है । वह पर-परिवार में स्त्री के श्रम की बात करती है । मिस सटलर का उदाहरण देकर वह कई बार यह भी कहती है कि आजीवन क्वांरी रहकर भी स्त्री सम्मान के साथ जिन्दगी काट सकती है । मिस सटलर एक लेडी डाक्टर है । पुष्पा से प्रतिवाद करते हुए संतकुमार कहता है —" उनके समाज में और हमारे समाज में बड़ा अंतर है । " तब जो बात पुष्पा कहती है वह श्लाघनीय एवं चिन्तनीय है — " अर्थात् उनके समाज के पुरुष शिष्ट हैं , शीलवान् हैं , और हमारे समाज के पुरुष चरित्र-हीन हैं , लम्पट हैं , विशेषकर जो पढ़े-लिखे हैं । " 91

प्रेमचन्दजी ने यहाँ मुख्यतः पुष्पा के द्वारा जो बात कहलवायी है , वह आज के संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है , बल्कि कहना चाहिए कि प्रेमचन्द ने आने वाले समय की आहट को पहचान लिया था ।

इस उपन्यास के संदर्भ में डा. मनोहर बंदोपाध्याय लिखते हैं — Premchand's battering attack on the capitalist order of Society Finds Forceful expression in the novel

Devkumar is the spokesman of the author's philosophy

• 92

अभिप्राय यह कि इस उपन्यास में लेखक ने पूंजीवाद का बड़ा डटकर विरोध किया है, विरोध ही नहीं, बल्कि आक्रमण कह सकते हैं। एकx उपन्यास का नायक देवकुमार एक प्रकार सेxx से लेखक का प्रवक्ता है जो पूंजीवाद का घोर विरोध करता है। इधर जब एक के बाद एक सरकारी या सामाजिक अ औद्योगिक प्रतिष्ठानों का निजीकरण हो रहा है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गिरफ्त बढ़ रही है, ऐसे समय में लेखक की चिंता और भी समयानुकूल और प्रासंगिक लग रही है।

डा. मन्मथनाथ गुप्त ने प्रस्तुत असमाप्त उपन्यास पर अपनी यथार्थ टिप्पणी देते हुए कहा है — " जितना उपन्यास हमारे सामने है, उस पर थोड़े से शब्द कह देना अधिक युक्तियुक्त होगा। यह निर्विवाद सिद्ध है कि "मंगलसूत्र" में प्रेमचन्द की कला अपने सर्वश्रेष्ठ निखार पर है। ... एक तरह के वे उपन्यासकार होते हैं जो अपनी पहली ही रचना में कला के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे हुए मालूम देते हैं, जैसे शरदचन्द्र। पर प्रेमचन्द की कला में बराबर विकास होता रहा है। ... ऐसा मालूम होता है कि इस उपन्यास में प्रेमचन्द मध्यम तथा उच्च वर्ग का बहुत बड़े पैमाने पर पर्दाफाश करने पर तुले हुए थे। दाम्पत्य-प्रेम, वकालत, पिता-पुत्र का संबंध, साहित्यकार, धर्म और दर्शन किस प्रकार इस समाज में केवल क्रय-विक्रय के पण्य हैं, किस प्रकार सारे आदर्शवादों के पीछे केवल जघन्य धन-पिपासा है, और इस कारण किस प्रकार यह समाज सड़ गल चुका है, इसे वे इस उपन्यास में दिखाने पर तुले हुए थे।" 93

निष्कर्ष :
======

अध्याय का विहंगावलोकन करने पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द मानवीय भावों , संवेदनाओं और सरोकारों के लेखक हैं और ऐसा लेखक लोकधर्मी होता है । लोकधर्मी लेखक अपने समय और युग की नब्ज को भलीभाँति पहचानता है , उसकी वस्तुनिष्ठता को आत्मसात करता है और इसीलिए आने वाले समय की आहट को भी पहचान लेता है । ऐसा लेखक क्रान्तद्रष्टा होता है , आर्षद्रष्टा होता है , और अतएव कभी प्रसंxx अप्रासंगिक नहीं होता है । गांधी , मार्क्स और अम्बेडकर कल भी प्रासंगिक थे , आज भी प्रासंगिक हैं ; क्योंकि उनकी चिन्ता दलितों और शोषितों के प्रति है , उनकी चिन्ता के केन्द्र में मनुष्य है । प्रेमचन्द के समग्र साहित्य में जिन समस्याओं का अंकन हुआ है , वे समाज समस्याएं किसी-न-किसी रूप में आज भी बनी हुई हैं ; बल्कि उनका स्वरूप और भी जटिल और चिन्तनीय हो गया है । अतः प्रेमचन्द के औपन्यासिक साहित्य की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लग सकता । दूसरे प्रेमचन्द निरंतर गतिशील रहे हैं , उनकी वैचारिक चेतना कहीं भी रुकी नहीं है । अतः वे किसी चौखटे में पूर्णतया फिट नहीं हो पाते , और ऐसा लेखक कभी प्रासंगिक अपनी प्रासंगिकता खोता नहीं है । बल्कि यों कह सकते हैं कि प्रेमचन्दको पढ़कर हम आज भी अपने समाज को , उसकी जटिल बुनावट को , उसके प्रश्नों और समस्याओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं ।

===== xxxxxx =====

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ प्रोग्रैस आफ रोमान्स : क्लारा रीव : पी. 18.

§2§ उद्धृत द्वारा : डा. प्रवीण दरजी : नवलकथा स्वरूप : पृ. 78 ।

§3§ प्रेमचन्द और उनका युग : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 31 ।

§4§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 115 ।

§5§ सेवासदन : प्रेमचन्द : पृ. 7 ।

§6§ औरत होने की सजा : अरविन्द जैन : पृ. 30-31 ।

§7§ सेवासदन : पृ. 25 ।

§8§ वही : पृ. 20 ।

§9§ युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 18 ।

§10§ सेवासदन : पृ. 117 ।

§11§ द्रष्टव्य : चिन्तनिका : डा. पारूकान्त देसाई : लेख - सरकारी कामकाज में हिन्दी का इस्तेमाल कैसे बढ़ाएं ? : पृ. 108 ।

§12§ हंस : अप्रैल-2001 : पृ. 29 ।

§13§ सेवासदन : पृ. 128 ।

§14§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. मनोहर बंदोपाध्याय : पी. 39 ।

§15§ " प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 169 ।

§16§ कलम का सिपाही : अमृतराय : पृ. 65 ।

§17§ यह शेर मेरे निर्देशक महोदय प्रायः सुनाते रहते हैं ।

§18§ संदेश : गुजराती दैनिक : 2-2-2000 ।

§19§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : पी. 19.

§20§ "प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : पृ. 171 ।

§21§ "प्रेमचन्द : जीवन कला और कृतित्व " : डा. हंसराज रहबर : पृ. 171 ।

§22§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन : पृ. 68 ।

§23§ युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 18 ।

§24§ प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द : 379-380 ।

§25§ वही : पृ. 47 ।

§26§ वही : पृ. 84 ।

§27§ वही : पृ. 85 ।

§28§ मानसमाला : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 25 ।

§28-ए§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : डा. मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 177 ।

§29§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. मनोहर बंदोपाध्याय : पृ. 42 ।

§30§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : एक अध्ययन " : डा. रामरतन भटनागर : पृ. 56 ।

§31§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " :पृ. 183 ।

§32§ प्रेमचन्द और उनका युग : डा. रामविलास शर्मा : पृ. 86 ।

§33§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 188-189 ।

§34§ रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ. 558 ।

§35§ द्रष्टव्य : प्रेमचन्द और उनका युग : पृ. 28 ।

§36§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारुकान्त देसाई : पृ. 119 ।

§37§ युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 18-19 ।

§38§ रंगभूमि : पृ. 558 ।

§39§ युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : पृ. 80-81 ।

§40§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार : पृ. 216-221 ।

§41§ " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : डा. मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 219 ।

§42§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 219 ।

§43§ रंगभूमि : प्रेमचन्द : पृ.478 ।

§44§ द्रष्टव्य : हंस : मई-2001 ।

§45§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन : पृ. 68 ।

§46§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 270-271 ।

§47§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 269 ।

§48§ वही : पृ. 300 ।

§49§ निर्मला : प्रेमचन्द : पृ. 153 ।

§50§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा. मनोहर बंदोपाध्याय : पी. 35.

§51§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 288-289 ।

§52§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 277 ।

§53§ गबन : प्रेमचन्द : पृ. 143 ।

§54§ वही : पृ. 152 ।

§55§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 282 ।

§56§ गबन : पृ. 232 ।

§57§ द्रष्टव्य : युगनिर्माता प्रेमचन्द तथा कुछ अन्य निबंध : डा. चन्द्रकान्ता देसाई : पृ. 20 ।

§58§ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : पृ. 69 ।

§59§ "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " : पृ. 315 ।

§60§ कर्मभूमि: प्रेमचन्द : पृ. 191 ।

§61§ टी.वी. धारावाहिक : प्रधानमंत्री : मई-जून : 2001 ।

§62§ गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 45 ।

§63§ वही : पृ. 126 ।

§64§ वही : पृ. 189 ।

(65) गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 223 ।
(66) वही : पृ. 231 ।
(67) वही : पृ. 364 ।
(68) वही : पृ. 365 ।
(69) वही : पृ. 365 ।
(70) द्रष्टव्य : आधुनिक साहित्य : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी :
पृ. 193 ।
(71) गोदान : पृ. 16 ।
(72) वही : पृ. 16 ।
(73) वही : पृ. 17 ।
(74) वही : पृ. 57 ।
(75) वही : पृ. 23 ।
(76) वही : पृ. 317 ।
(77) वही : पृ. 253 ।
(78) वही : पृ. 12 ।
(79) वही : पृ. 12 ।
(80) वही : पृ. 357 ।
(81) आठ कहानियाँ : पूस की रात : सं. ललित शुक्ल : पृ. 6-7 ।
(82) द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " :
डा. मन्मथनाथ गुप्त : पृ. 340 ।
(83) वही : पृ. 341 ।
(84) वही : पृ. 340 ।
(85) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा. एस.एन. गणेशन :
पृ. 69-70 ।
(86) द्रष्टव्य : "प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार "
: पृ. 352 ।

§87§ "द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " :
डा॰ मन्मथनाथ गुप्त : पृ॰ 354 ।

§88§ द्रष्टव्य : वही : पृ॰ 355 ।

§89§ द्रष्टव्य : वही : पृ॰ 356 ।

§90§ द्रष्टव्य : कलम का मजदूर : मदनगोपाल : पृ॰ 309 ।

§91§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " :
पृ॰ 352 ।

§92§ लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द : डा॰ मनोहर बंदोपाध्याय :
पृ॰ 167 ।

§93§ द्रष्टव्य : " प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार " :
पृ॰ 358-359 ।

========= XXXXXX =========